1. Name of the sm contributor - Dr. Mahalaxmi singh

2. Class and subject - B. ed. 1st year pedagogy in hindi

3. Unit - 3rd , 4rth , 5th

4. Topic - भाषा अर्जन , सीखना व विकास , हिन्दी के विविध रुप , हिन्दी की पाठ्यचर्या , पाठ्यक्रम व पाठ्य सामग्री

5. Objective - भाषा अर्जन , सीखना व विकास , हिन्दी के विविध रुप , हिन्दी की पाठ्यचर्या , पाठ्यक्रम व पाठ्य सामग्री को जानना

6. Content - भाषा अर्जन , सीखना व विकास , हिन्दी के विविध रुप , हिन्दी की पाठ्यचर्या , पाठ्यक्रम व पाठ्य सामग्री

7. Point of evaluation --

भाषा अर्जन, सीखना व विकास

-भाषा ग्रहण और भाषा रचना की क्षमता का विकास बच्चों में कैसे होता है-बच्चे अपनी पहली भाषा कैसे सीखते हैं- 'भाषा अर्जन' के अन्तर्गत इन प्रश्नों पर विचार किया जाता है। भाषा ग्रहण व भाषा रचना का भाषा अर्जन के साथ अन्योन्य अ्रित सम्बन्ध है। पहले दो क्षेत्रों के अध्ययन व निष्कर्ष बच्चे की भाषा सीखने की प्रक्रिया को समझने में सहायक होते हैं। दूसरी ओर, भाषा अर्जन, सम्बन्धी शोधों से वयस्कों की भाषायी क्षमता को समझने में सहायता मिलती है। इसके दो पक्ष हैं

1. भाषायी क्षमता (Competence)-वक्ता की भाषा की व ज्ञान को भाषायी क्षमता कहते हैं। इसमें वक्ता द्वारा ग्रहण किए गए भाषायी नियम होते हैं। ये किसी भी समुदाय के सभी सदस्यों में मौजूद होती है। इसका स्वरूप अमूर्त होता है।

2. भाषायी व्यवहार (Performance)- सम्प्रेषण के लिए वक्ता द्वारा बोली जाने वाली वास्तविक भाषा को भाषा व्यवहार कहते हैं। इसका स्वरूप मूर्त होता है। बोलते समय हम प्रायः रुकते हैं, वाक्य को अधूरा छोड़ देते हैं, पुनरावृत्ति करते हैं या अटकते हैं। ये सब चीजें भाषायी व्यवहार का हिस्सा होती हैं। भाषायी क्षमता भाषायी व्यवहार का आधार होती है। प्रथम भाषा अर्जन के अन्तर्गत मुख्य रूप से तीन पक्षों पर विचार किया जाता है

(1) भाषा अर्जन का आधार

(2) भाषा अर्जन की क्षमता

(3) भाषा अर्जन के चरण

1. भाषा का अर्जन का आधार-बच्चे अपनी पहली भाषा किसी औपचारिक प्रशिक्षण के बिना सहज रूप से सीख लेते हैं। स्वतः भाषा सीखने की यह प्रक्रिया काफी तेज गति से होती है। पाठ्शाला में कदम रखने वाला हर बच्चा बहुत कुशलता से अपने आस-पास बोली जाने वाली भाषा को बोल व समझ लेता है, चाहे वह किसी भी समाज-वर्ग या संस्कृति का हो जबकि कुछ गिने-चुने पक्ष सघन प्रशिक्षण के बावजूद एक सीमा तक ही सम्प्रेषण कर पाते हैं। ऐसा कैसे सम्भव हो जाता है ? निष्कर्ष यह निकलता है कि मनुष्य में अन्तर्जात क्षमता होती है। वह भाषा सीखने के लिए न केवल आनुवंशिक रूप से सम्पन्न होता है बल्कि भाषा अर्जन उसके जैविक विकास में संज्ञानात्मक विकास से भी जुड़ा होता है। यही जैविक क्षमता मनुष्य के भाषा-अर्जन का आधार होती है पर भाषा-अर्जन के लिए अंतर्जात क्षमता व जैविक परिपक्ता अपने आप में पर्याप्त नहीं है। प्रकृति प्रदत्त क्षमता को आरम्भ करने के लिए भाषायी परिवेश का होना आवश्यक है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि अंतर्जात क्षमता भाषा निरपेक्ष होती है। यही कारण है कि हिन्दी-भाषी परिवार में जन्मा हुआ बच्चा प्रथम तीन-चार वर्ष में मराठी परिवेश में रहता है तो वह मराठी सहज रूप से सीख लेगा। उसकी जैविक क्षमता किसी भी भाषा को सीखने के लिए होगी, किसी एक भाषा को सीखने के लिए नहीं।

2. भाषा अर्जन की क्षमता-भाषा-अर्जन से जुड़ा दूसरा प्रश्न यह है कि बच्चा कैसे सीखता है ? स्किनर जैसे व्यवहार वादियों के दृष्टिकोण के अनुसार बच्चा यांत्रिक ढंग से अनुकरण करके भाषा सीखता है। बड़ों की सकारात्मक व नकारात्मक प्रतिक्रिया से भी उसे सही ढंग से अनुकरण करके भाषा सीखने में मदद मिलती है। भाषा अर्जन में बच्चे की अपनी कोई भूमिका नहीं होती दूसरी ओर पियाजे, दे गोरी जैसे मनोवैज्ञानिकों और चॉम्स्की जैसे भाषाविदों के अनुसार प्रथम भाषा-अर्जन में बच्चे की ही विशेष भूमिका होती है, वह जैविक क्षमता की मदद से आस-पास बोली जाने वाली भाषा को सुनता और गुनता है और सुनी हुई भाषा के आधार पर मस्तिष्क में वे नियम गढ़ता है जिनकी सहायता से भाषा का बोला जाने वाला मूर्त रूप रचा जाता है। बच्चा जो बोलता है वह मात्र अनुकरण नहीं होता, यदि वह अनुकरण होता है तो बच्चा ऐसे शब्द, वाक्य आदि क्यों गढ़ता है, जो वयस्क भाषा में उसने न सुनी हो। उदाहरण के लिए मारना के बजाय मराना का प्रयोग अंग्रेजी में Come की बजाय comed का प्रयोग। ये शब्द वयस्कों की भाषा में नहीं होते, इन्हें बच्चा खुद गढ़ता है।

3. भाषा अर्जन के चरण-भाषा अर्जन का तीसरा महत्वपूर्ण पक्ष उसके विभिन्न चरण या भाषा-अर्जन का क्रमबद्ध कार्यक्रम है। बच्चा ध्वनि, शब्द, वाक्य, अर्थ आदि के स्तर पर किस चरण पर क्या सीखता है ? यह अपने आप में काफी रोचक अध्ययन क्षेत्र है जिस पर हिन्दी के सब्दर्भ में बहुत कम काम हुआ है। प्रथम भाषा-अर्जन के विभिन्न चरणों का संक्षिप्त विववरण इस प्रकार है भाषा पूर्व चरण (Pre-language stage) लगभग तीन से छह माह के बीच कूजने (cooin) और छः से ग्यारह माह के बीच बबलाने (Bablane) की अवस्था होती है। जब बच्चा अनायास ही मुँह से तरह-तरह की ध्वनियाँ निकालता है जिनका कोई अर्थ नहीं होता। इन अवस्थाओं को भाषा-अर्जन का हिस्सा नहीं माना जाता बल्कि भाषा-अर्जन की तैयारी माना जाता है। एक शब्द चरण (One word stage)-एक से डेढ़ वर्ष की आयु में बच्चा यह सीख जाता है कि ध्वनि समूहों के साथ अर्थ भी जुड़ सकता है। इस चरण में वह एक-एक शब्द बोलने लगता है। ये शब्द उसके दैनिक जीवन व आस-पास के परिवेश से जुड़े होते हैं; जैसे-दूध, पानी, केला, कुत्ता, गेंद आदि। इस चरण को वाक्य शब्दीय (holophastic) चरण भी कहा जाता है, क्योंकि कई बार बच्चा एक शब्द का प्रयोग वाक्यांश या पूरे वाक्य के लिए भी करता है, जैसे 'दूध' शब्द का प्रयोग वह 'दूध चाहिए' के लिए भी कर सकता है और 'दूध वाला आ गया है' कहने के लिए भी कर सकता है। दो शब्द चरण (Two word stage)-लगभग 18-20 माह में बच्चा दो शब्द एक साथ बोलने लगता है। इन शब्दों में वाक्य-विन्यास या रूपिम चिह्न नहीं होते पर इनके माध्यम से अभिव्यक्त की गई बात से स्पष्ट होता है कि ये दो शब्द स्वतंत्र नहीं है, उनका आपस में सम्बन्ध है। जैसे 'दीदी जूता में कर्ता-कर्म सम्बन्ध होगा, यदि बच्चे का अभिप्राय 'दीदी जूता पहनायेगी' ही सम्बन्ध कारक होगा यदि अभिप्राय दीदी का जूता हो। बहुशब्दीय चरण (Multiple word stage) यह चरण आरम्भिक वर्ष में प्रारम्भ होता है जब बच्चा तीन या उससे अधिक शब्दों की श्रृंखला बोलने लगता है। भाषा-अर्जन के इस पड़ाव में बच्चा अभिव्यक्ति के लिए केवल उन्हीं शब्दों को चुनता है जो अर्थ की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो। ऐसी भाषा को तार भाषा (Teley speech) कहा जाता है क्योंकि

तार भेजते समय भी हम शब्दों की बचत करने के लिए अत्यन्त संक्षिप्त रूप में सन्देश भेजते हैं। दोनों ही स्थितियों में अर्थपरक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, प्रयोगपरक शब्दों को छोड़ दिया जाता है। उदाहरण के लिए 'दीदी मीना पिटी' की वास्तविक संरचना दीदी ने मीना की पिटाई की यहाँ ने, की, की, अर्थ की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण है।

द्वितीय एवं तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी की भूमिका

स्वतंत्रता के पश्चात माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-54 माध्यमिक स्तर पर भाषाओं के अध्ययन पर बल दिया, जिसमें हिन्दी भाषा के अनिवार्य शिक्षण का सुझाव दिया था, जबकि अंग तथा संस्कृत को हिन्दी के बाद का स्थान प्रदान किया गया। इसी प्रकार भाषा विवाद का हल करते हा कोठारी आयोग 1964-66 से त्रिभाषा सूत्र प्रदान किया, जिसमें प्रयास स्थान दोत्रीय भाषा अवता मातृभाषा, द्वितीय स्थान हिन्दी तथा तृतीय स्थान अंग्रेजी भाषा को प्रदान किया गया। वर्तमान में कोठारी आयोग के सुझाव के अनुसार ही भाषा सूत्र को ही अपनाया जा रहा है। इस भाषा समस्या के विवाद का अंत आज पर्यन्त नहीं हो सका है, सम्पूर्ण भारत में किसी एक भाषा को स्वीकार करना, धीरे-धीरे कठिन होता जा रहा है। द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण की प्रकृति जटिल है जबकि तृतीय भाषा का शिक्षण सामान्य होता है। द्वितीय भाषा साहित्य सृजन हेतु आधार प्रस्तुत करती है जबकि तृतीय भाषा मात्र सम्पर्क भाषा के रूप में सीखी जा रही है।

चतुर्वेदी 2012 के अनुसार, "द्वितीय भाषा का उद्देश्य बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास से सम्बन्धित होता है, जबकि तृतीय भाषा का उद्देश्य भाषा के कौशलों के विकास तक ही सीमित रहता है। उक्त कान से स्पष्ट है कि द्वितीय एवं तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण के उद्देश्यों में पर्याप्त सीता देखने को मिलती है। द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण भाषा का आधार प्रस्तुत करता है, साहित्य सृजन क्या इतिहास से परिचित कराया जाता है, जबकि तृतीय भाषा का शिक्षण भाषा पर अधिकार प्राप्त करना, सम्प्रेषण अर्थात् विचार-विनिमय की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक होता है।

द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी की भूमिका

द्वितीय भाषा से तात्पर्य-ऐसे अहिन्दी-आधी राज्य जहाँ पर हिन्दी स्वाभाविक एवं विचार-विजिमय की भाषा नहीं है। जहाँ हिन्दी भाषा सीखने के लिए अत्यधिक प्रयास की आवश्यकता हो, हिन्दी के अलावा कोई दूसरी क्षेत्रीय भाषा अस्तित्व अखिल प्रचलन में हो। ऐसे छों में हिन्दी द्वितीय भाषा के रूप में शिक्षण किया जाता है। ऐसे क्षेत्रों में हिन्दी को केवल सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है लेकिन मातृभाषा के रूप में नहीं। के. वी. एल. नरसिंह राव के अनुसार-"द्वितीय भाषा वह भाषा है जिसका वातावरण कम से कम स्कूल में और बाहर भी प्राप्त हो और मातृभाषा की तुलना में कुछ कम हो।

अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का शिक्षण द्वितीय भाषा के रूप में किया जाता है। द्वितीय भाषा का स्थान प्रथम भाषा की अपेक्षा कठिन होता है, साथ ही द्वितीय भाषा के उद्देश्य अत्यन्त ही सामान्य होते हैं। प्रयम भाषा का शिक्षण विद्यार्थी स्वतः प्राप्त कर लेता है, जबकि द्वितीय भाषा के रूप में शिक्षा हेतु कृत्रिम परिस्थितियों का निर्माण करना आवश्यक होता है। द्वितीय भाषा के शिक्षण की आवश्यकता विभिन्न भाषाई कौशलों जैसे पढ़ना, लिखना, बोलना, सुजला इत्यादि के विकास तक ही सीमित होता है। अतः द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी भाषा शिक्षण के उद्देश्य भी प्रिवर्तित हो जाते है। माध्यमिक स्तर पर द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी-शिक्षण के उद्देश्य जिम्न हैं :-

1. भाषा कौशलों का विकास-द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी-शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य भाषाई कौशलों का विकास करना होता है। इस स्तर पर विद्यार्थियों को हिन्दी साहित्य से परिचित न कराते हुए विभिन्न भाषाई कौशलों का विकास किया जाता है, जिससे विद्यार्थियों की सम्प्रेषण क्षमता विकसित हो सके।

2. अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना-द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण का उद्देश्य हिन्दी को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना है। हिन्दी भाषा-शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों को अपने विचारों एवं बालों को हिन्दी में अभिव्यक्त करने योग्य बनाया जाता है।

3. सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित करना-द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी भाषा शिक्षण का उद्देश्य हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित करना है। भारत अनेक भाषा-भाषी वाला राज्य है, यहाँ भाषाई विविधता के कारण विभिन्न राज्य के व्यक्तियों को प्रवास के दौरान विचार-विनिमय में समस्या उत्पन्न होती है। सम्पूर्ण भारत में हिन्दी भाषा शिक्षण के माध्यम से सरलता से विचार-विनिमय एवं सम्पर्क किया जा सकता है।

4. हिन्दी भाषा के प्रयोग पर बल-द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण का उद्देश्य हिन्दी भाषा के प्रयोग पर बल देना है, हिन्दी भाषा के शिक्षण के माध्यम से अहिन्दी भाषी लोग हिन्दी के प्रयोग में सक्षम हो सकेंगे। 5. हिन्दी भाषा के प्रति रुचि उत्पन्न करना-हिन्दी-शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य हिन्दी भाषा के विषय में सामान्य जानकारी प्रदान कर, इस भाषा के प्रति रूचि उत्पन्न करना है। भाषा में रुचि के अभाव में अधिगम प्रभावी नहीं हो सकता है।

6. हिन्दी भाषा को राजभाषा के रूप में स्थापित करना-भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है, अतः हिन्दी का प्रचार-प्रसार अत्यन्त ही आवश्यक है। अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग को अधिकाधिक बढ़ाना, जिससे हिन्दी भाषा का प्रयोग सरल एवं सहज हो सके।

7. राष्ट्रीय एकता का विकास करना-द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण का उद्देश्य सम्पूर्ण भारत को एक भाषा-सूत्र में बाँधना है। किसी भी राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता हेतु भाषाई समानता का होना अति आवश्यक है। हिन्दी शिक्षण के माध्यम से विभिन्न राज्यों के मध्य वैमनस्य को दूर कर राष्ट्रीय एकता को विकसित करना है।

8. संवैधानिक आदर्शों का पालन करना-भारतीय संविधान में हिन्दी को राजभाषा बनाने का उल्लेख किया गया है, किसी भी भाषा को राजभाषा बनाने के लिए भाषा का ज्ञान आवश्यक है, द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण का सांवैधानिक आदर्शों का पालन करना, प्रमुख उद्देश्य है।

9.हिन्दी भाषी रज्यों की संस्कृति से परिचित कराना-अहिन्दी भाषी राज्यों की संस्कृति, रहन-सहन,खान-पान, वेशभूषा इत्यादि हिन्दी भाषी राज्यों से भिन्न होती है अतः हिन्दी शिक्षण का उद्देश्य केवल भाषा शिक्षण ही नहीं है बल्कि हिन्दी भाषा राज्यों की संस्कृति से भी परिचित कराना है।

10. उच्च शिक्षा हेतु प्रेरित करना-द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण का उद्देश्य अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचार-प्रसार कर वहाँ के विद्यार्थियों को हिन्दी के क्षेत्र में उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु प्रेरित करना है जिससे इन क्षेत्रों में साहित्य सृजन होने लगेगा, धीरे-धीरे साहित्य मीमांसा, अनुवाद कौशल इत्यादि का विकास होने लगेगा।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत के विभिन्न राज्यों में हिन्दी-शिक्षण प्रथम भाषा के रूप मेंनहीं किया जा सकता है। क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभावी अस्तित्व होने के कारण हिन्दी का शिक्षण प्रथम एवं द्वितीय दोनों भाषाओं के रूप में किया जाता है। हिन्दी का प्रचार राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यन्त आवश्यक है, प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र की अपनी संस्कृति एवं भाषा होती है, लेकिन भारत का यह दुर्भाग्य है कि स्वतन्त्रता के 67 वर्ष पश्चात् भी कोई राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकृत नहीं हो पाई है। प्रथम एवं द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण हिन्दी भाषा के विकास में सहायक होगा, जिससे सम्पूर्ण भारत में हिन्दी भाषा को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्थापित करने में सहायता प्राप्त हो सकेगी।

तृतीय भाषा के रूप हिन्दी की भूमिका

तृतीय भाषा का अर्थ-तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी से तात्पर्य यह है कि ऐसे क्षेत्र जहाँ हिन्दी क्षेत्रीय भाषा के साथ-साथ सम्प्रेषण का प्रमुख माध्यम भी है। ऐसे क्षेत्रों में हिन्दी को तृतीय भाषा के रूप में स्थान प्रदान किया जाता है। ऐसे हिन्दी भाषी क्षेत्र जहाँ पर हिन्दी भाषा को तृतीय भाषा के र में स्वीकार किया जाता है। हिन्दी भाषा का अध्ययन एवं अध्यापन तृतीय भाषा के रूप में किया जाता है। **तृतीय भाषा का तात्पर्य मातृभाषा से है**, ऐसी भाषा जो परिवार में बोली जाती है तया उस स्थान विशेष के लोगों द्वारा स्वाभाविक रूप से बोली और समझी जाती है, जो उस क्षेत्र की सम्पर्क भाषा भी हो, जिसमें साहित्य सृजन कार्य भी होता हो, ऐसे राज्यों में हिन्दी को तृतीय भाषा के रूप में स्वीकार कर शिक्षण किया जाता है। वर्तमान भारत में ऐसे राज्य उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल, हिमाचल, बिहार, झारखण्ड दिल्ली इत्यादि है। चूँकि इन क्षेत्रों में हिन्दी स्वाभाविक एवं मातृभाषा होती हैं, ऐसे क्षेत्रों में हिन्दी भाषा शिक्षण सम्पर्क भाषा के रूप में ही न करते हुए, साहित्य मीमांसा के स्तर पर भी किया जाता है।

तृतीय भाषा के रूप में माध्यमिक स्तर पर हिन्दी शिक्षण के उद्देश्य-इस स्तर पर हिन्दी शिक्षण के उद्देश्य तुलनात्मक रूप से जटिल तथा विशिष्ट होते हैं। माध्यमिक स्तर पर तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण के उद्देश्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, प्रथम-सामान्य उद्देश्य, द्वितीय-विशिष्ट उद्देश्य।

1. तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण के सामान्य उद्देश्य

1. उचित आरोह-अवरोह में उच्चारण क्षमता का विकास करना।

2. शुद्ध लेखन क्षमता का विकास करना। 3. रूट रहित वाचन क्षमता का विकास करना।

4. विचारों को सुनकर अर्यग्रहण करने की योग्यता का विकास करना। 5.हिन्दी भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना।

6. हिन्दी भाषा के शब्द-भण्डार में वृद्धि करना।

7.हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार करना।

8. हिन्दी साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना।

9. विद्यार्थियों में विभिन्न मूल्यों का विकास करना, इत्यादि।

2. तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य-ऐसे उद्देश्य जो केवल तृतीय भाषा के रूप में शिक्षण के द्वारा ही प्राप्त होते हैं, उन्हें विशिष्ट उद्देश्य कहा जाता है जबकि सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति प्रथम एवं द्वितीय दोनों ही भाषाओं के शिक्षण के माध्यम से प्राप्त होते हैं । विशिष्ट उद्देश्यों को अनेक भागों में वर्गीकृत किया गया है, जो निम्न है:-

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य-ज्ञानात्मक उद्देश्य ब्लूम के द्वारा वर्गीकृत उद्देश्यों में प्रथम उद्देश्य है, जिसमें विद्यार्थी विषय के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करते हैं। हिन्दी शिक्षण के अन्तर्गत छात्रों को भाषा का ज्ञान प्रदान किया जाता है जो निम्न हैं

1. छात्रों को ध्वनि तत्व से परिचित कराना।

2. छात्रों को हिन्दी की शब्द संरचना तथा वाक्य संरचना से परिचित कराना।

3. छात्रों को विभन्न सूक्तियों, लोकोक्तियों, मुहावरे इत्यादि से परिचित कराना।

4.हिन्दी साहित्य के इतिहास से परिचित कराना।

5. छात्रों में विभिन्न साहित्यकारों तथा उनकी रचनाओं का ज्ञान कराना।

6.हिन्दी की विभिन्न विधाओं जैसे कविता, नाटक एकांकी, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, पत्र, निबन्ध, साक्षात्कार, संवाद इत्यादि

का ज्ञान प्रदान कराना।

2. कौशलात्मक उद्देश्य-कौशलात्मक उद्देश्यों के अन्तर्गत छात्र में विभिन्न कौशलों का विकास किया जाता है। कौशलात्मक उद्देश्य भाषाई कौशलों के विकास पर आधारित होता है जैसे बोलना, पढ़ना, लिखना, सुनना इत्यादि। इस दृष्टि से अनेक उद्देश्य हैं:-

1. छात्रों में स्पष्ट एवं शुद्ध उच्चारण-क्षमता का विकास करना। 2.छात्रों में स्पष्ट एवं शुद्ध वाचन-क्षमता का विकास करना।

3.में स्पष्ट एवं शुद्ध लेखन-क्षमता का विकास करना। 4. छात्रों में विभिन्न वाक्यों को सुनकर अर्थ ग्रहण करने की क्षमता का छात्रोंविकास करना।

5. अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास करना।

6. साहित्य सृजन क्षमता का विकास करना। 7. हिन्दी भाषा में अनुवाद क्षमता का विकास करना।

3. रसात्मक एवं सौन्दर्यात्मक उद्देश्य-प्रथम भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण का यह एक प्रमुख उद्देश्य है, 'भाषा अनुभूति का विषय होता है। रसानुभूति से तात्पर्य 'रस की अनुभूति' से है, हिन्दी की प्रत्येक विधा रस से परिपूर्ण होती है, छात्र जब तक इन रसों की अनुभूति-योग्य नहीं हो जाते, तब-तक साहित्य में रूचि का विकास नहीं हो सकेगा। रसात्मक उद्देश्य निम्न हैं:-

1. श्रावण के माध्यम से रसास्वादन करना।

2. वाचन करते हुए रसास्वादन करना। 3. उच्चारण करते हुए रसास्वादन करना।

4. लेखन के दौरान रसास्वादन करना।

5. छात्रों को प्रकृति, मानव इत्यादि विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य की अनुभूति कराना।

4. सृजनात्मक उद्देश्य-प्रथम भाषा के रूप में हिन्दी का यह उद्देश्य अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। सृजनात्मक उद्देश्य हिन्दी भाषा के अस्तित्व की रक्षा तथा विकास में सहायक है। इस उद्देश्य केमाध्यम से हिन्दी भाषा को अधिक समृद्ध और परिष्कृत किया जा सकता है। अतः हिन्दी के छात्रों को मौलिक चिन्तन एवं साहित्य सृजन के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। ये उद्देश्य निम्न हैं 1. हिन्दी साहित्य सृजन जैसे गद्य, पद्य इत्यादि को प्रेरित करना।

2. साहित्य सृजन हेतु अवसर उपलब्ध कराना। जैसे विभिन्न लेखन प्रतियोगिताओं का आयोजन करना, इत्यादि।

3.छात्रों में मौलिकता का विकास करना। 4. सृजनात्मक तर्क, कल्पना एवं चिन्तन का विकास करना।

5. भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति को क्रमबद्धता प्रदान करना।

6. विभिन्न साहित्यकारों से मार्गदर्शन उपलब्ध करवाना।

5. अभिवृत्यात्मक उद्देश्य-अभिवृत्ति से तात्पर्य किसी विषय में व्यक्ति की सोच से है। तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी भाषा का शिक्षण करते समय अभिवृत्यात्मक उद्देश्यों को भी ध्यान में रखना होता है। छात्रों की विषय के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति हिन्दी के विकास के लिए अतिआवश्यक है। ये उद्देश्य निम्न हैं:-

1.छात्रों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति का विकास करना।

2. हिन्दी भाषा के प्रति सम्मान का दृष्टिकोण स्थापित करना। 3. हिन्दी साहित्य एवं साहित्यकारों के प्रति सम्मान उत्पन्न

करना।

4. छात्रों का सामाजिक मुद्दों से सरोकार स्थापित करना। 5.छात्रों की संवेदनाओं का विकास करना।

6. परिश्रम, धैर्य, मानव-संस्कृति, प्रेम जैसे सामाजिक एवं मानवीय गुणों का विकास करना। उक्त विवरण से स्पष्ट है कि तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण के अत्यन्त ही जटिल उद्देश्य है। तृतीय भाषा के रूप में शिक्षण द्वारा भाषा को परिमार्जित, परिष्कृत तथा समृद्ध किया जाता है जो कि दूसरी भाषा के रूप में शिक्षण कर प्राप्त करना कठिन होता है।

विद्यालय में भाषा अर्जन में भाषाई परिवेश का महत्व

विद्यालय में भाषा अर्जन में भाषाई परिवेश का महत्व बाल्यावस्था जीवन की आधारभूत अवस्था है। बालक बाल्यावस्था से ही भाषा सीखने का प्रयत्न करता है। भाषा मानव संस्कृति की सर्वोच्च देन है। भाषा की समाज सापेक्षता का अध्ययन आजकल समाज भाषाविज्ञान से करता है। भाषा का मौलिक सम्बन्ध व्यक्ति के साथ है, व्यक्ति ही भाषा का आधार है। व्यक्ति ही भाषा का उत्पादक, ग्राहक और अध्येता है। अतः भाषा का व्यक्तिपरक अध्ययन भी किया जाता है और यह कार्य मनोभाषाविज्ञान करता है। भाषा का अध्ययन बालकों के संदर्भ में करना अत्यन्त रोचक विषय है, क्योंकि विचारों के सम्प्रेषण माध्यम के रूप में भाषा बालक के लिए एक केन्द्रीय साधन है। बाल भाषा का व्यापक क्षेत्र समाज है। भाषाई प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में बाल मनोभाषिकी में न केवल भाषा रूपों को सीखने की प्रक्रिया और सम्प्रेषण के प्रकार्य के विकास पर चर्चा होती है, अपितु सन्देशों एवं विचारों की विशिष्टताओं और विचित्रता के सन्दर्भ में, बालक द्वारा संवेदना आदि भी इसके मुख्य विषय हैं। ये विषय मात्र बालकों के भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं हैं, अपितु बाल भाषाविदों के लिए भी उपयोगी हैं जो उत्पादन नियमों के मार्ग ढूँढते हैं और बाल भाषा के आधार पर भाषा को समझने का प्रयास करते हैं।

भाषा के उत्पादन में शरीर, मन और मस्तिष्क साथ-साथ सक्रिय होते हैं, इसलिए बालक के के आंतरिक अवयवों का स्वरूप और प्रकार्य भाषा अर्जन में सहायक या बाधक हो सकते हैं। हृदय, श्वसन तंत्र, माँसपेशियों आदि अवयव भाषा की उच्चारण प्रक्रिया को काफी प्रभावित करते हैं। इन अंगों का परिपक्व होना भाषा के सहज उत्पादन के लिए अति आवश्यक है, उनमें किसी प्रकार के दोष से भाषा दोषपूर्ण हो सकती है। होठ और तालु क्षतिग्रस्त होने से भी उच्चारण में विकार पैदा होते हैं। वाकहीन में स्वर तन्त्रियाँ आदि वाणिइन्द्रियाँ अपरिपक्व होने या क्षतिग्रस्त होने से वाक् शून्यता की स्थिति पैदा होती है। इसी प्रकार मस्तिष्क के अपरिपक्व होने या क्षतिग्रस्त होने से भी भाषिक क्षमता में कमी आती है। विद्यालय में भी भाषा अर्जन कराया जाता है। विद्यालय में भाषा अर्जन करने में शिक्षक व पाठ्यक्रम दोनों सहायक होते हैं। बालक की आयु, मानसिक स्थिति के अनुसार परिवेश शारीरिक, मानसिक तथा मस्तिष्कीय संरचना को ठीक-ठीक समझ लेना आवश्यक है, विशेषकर शरीर निर्माण कर शिक्षण पाठ्यक्रम की सहायता से बालक को शिक्षा देना का कार्य करता था। शिक्षा बालक के अनुसार परिवेश का निर्माण कर भाषाई परिवेश के द्वारा बालक को भाषा अर्जन करना सिखाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषाई परिवेश, भाषा अर्जन में विद्यालय की प्रमुख भूमिका होती है।

भाषा विकास के चरण

बालकों के भाषा विकास की प्रक्रिया लम्बी और जटिल है। इसके अनेक चरण हैं। यद्यपि जन्म के बाद प्रथम क्रन्दन को ही बालक का भाषा विकास की प्रारम्भिक अवस्था माना जाता है किन्तु इस समय उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि उसका क्रन्दन किस कारण से है ? बालक का भाषा विकास तभी वास्तविक माना जाता है जब वह स्वयं द्वारा उच्चारित शब्दों का अर्य समझ सके तया शब्दों का व्यक्तियों और वस्तुओं से सम्बन्ध जोड़ सके। अतः बालकों के भाषा विकास की अवस्थाओं को अधोलिखित पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है:-

(1) बोलने की तैयारी-क्रन्दन, बलबलाना एवं हावभाव संकेत आदि।

(2) आकलन शक्ति का विकास। (3) शब्द-शक्ति का विकास।

(4) वाक्य-निर्माण का विकास। (5) शुद्धोच्चारण का विकास।

1. बोलने की तैयारी-क्रन्दन, बलबलाना एवं हावभाव संकेत:-

बोलने की तैयारी' भाषा विकास की प्रारम्भिक अवस्था है। यह अवस्था जन्म के बाद से प्रारम्भ होकर 13-14 माह तक होती है। बालक भाषा विकास की इस प्रक्रिया में क्रन्दन, बलबलाना अथवी हावभाव द्वारा अपनी वाणी को प्रकट करने का प्रयास करता है:-

1. शिशु का क्रन्दन-प्रत्येक सामान्य शिशु के जीवन का प्रारम्भ उसके क्रन्दन से होता है। मनोवैज्ञानिको ने बालक के क्रन्दन को ही भाषा विकास का प्रारम्भिक स्वरूप माना है। क्रन्दन की क्रिया एक सहज या सरल क्रिया है। इसका बालक से कोई बौद्धिक या संवेगात्मक सम्बन्ध नहीं होता। जन्म के उपरांत प्रथम दो सप्ताह तक भी दिलों को येना उद्देश्यहीन तथा अनियमित होता है किन्तु आयु वृद्धि के साथ-साथ शिशु का क्रन्दन उसकी आवश्यकताओं से जुड़ता जाता है। तीन-चार सप्ताह के उपरांत शिशु के क्रन्दन से यह स्पष्ट होने लगता है कि या तो वह भूखा है, उसे कोई पीड़ा है या उसका वस्त्र या बिस्तर गीला हो गया है।

शिशु क्रन्दन के कारण-जन्म के पश्चात् दो सप्ताह तक तो शिशु के क्रन्दन की क्रिया निर्थक होती है लेकिन दो सप्ताह बाद उसका क्न्दन परिस्थितिजन्य हो जाता है। शिशु क्रन्दन के अन्त्बाह्य कारण हो सकते हैं; जैसे-भूख, यकान, गीले वस्त्र, तीव्र ध्वनियाँ, तीव्र प्रकाश तथा भय आदि। जैसे-जैसे बालक की आयु बढ़ती जाती है उनके रोने के कारणों में भी वृद्धि होती जाती है। तीन-चार माह का बालक अपने आस-पास के दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति को समझने लगता है। अतः उसका क्रन्दन दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये भी होने लगता है। चार-पाँच माह के शिशु अपरिचित व्यक्तियों को देखकर रोने लगता है। 6-7 माह के शिशु अपनी प्रिय वस्तु छीन लेने पर रोते हैं। यदि उनकी क्रियाओं में बाधा उत्पन्न की जाती है तो भी वह रोने लगते हैं। 1 वर्ष का बालक भय, अपरिचित व्यक्ति एवं परिस्थिति, कसे वस्त्र, भूख-प्यास तथा पीड़ा की स्थिति में रोता है। ये बालक अन्य बालकों की तुलना में अधिक रोते हैं, जो क्रन्दन को अपनी आवश्यकता पूर्ति का साधन समझते हैं।

शिशु क्रन्दन में शारीरिक स्थितियाँ-सभी बालकों का रोने का स्वरूप समान नहीं होता। कुछ बालक अधिक रोते हैं जबकि कुछ बालक कम । मनोवैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि जो गर्भवती माताएँ गर्भावस्था में संवेगात्मक रूप से अस्थिर रहती हैं जन्म के पश्चात् उनके शिशुओं में क्रन्दन की प्रवृत्ति अधिक होती है, इसके विपरीत संवेगात्मक रूप से सन्तुलित गर्भवती माताओं के शिशु कम रोते हैं। रोते समय बालकों की आन्तरिक तथा बाह्य शारीरिक स्थितियों में परिवर्तन आ जाता है, जो बालक जितनी अधिक तेजी से रोते हैं उनकी शारीरिक क्रियाएँ; जैसे-हाथ-पैर पटकना, शरीर को पलटना तथा उतनी ही तीव्र होती है। इसके अतिरिक्त रोते समय चेहरा लाल हो जाता है, साँस की गति अनियमित तथा अनियन्त्रित हो जाती है। एक माह से अधिक आयु के शिशु की आँखों से आँसू भी निकलते हैं। इस आयु वृद्धि के साथ-साथ बालक के क्रन्दन में कमी आ जाती है।

शिशु क्रन्दन से लाभ एवं हानि-भाषा विकास में शिशु के रोने का अपना महत्त्व है क्योंकि इसी से भाषा विकास प्रारम्भ होता है किन्तु रोने को आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम जब बालक बना लेता है वह उसके स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है, जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कराने के लिये अधिक रोते हैं वे बालक चिड़चिड़े एवं जिद्दी हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप अधिक रोने से उनका शरीर दुर्बल हो जाता है। शिशु का सामान्य सोना स्वास्थ्य के लिये व्यायाम का कार्य करता है। रोने से शिशु की मांसपेशियों की वृद्धि होती है और उनमें क्रियाशीलता भी आती है। इसके साथ ही रोने से शिशु के संवेगों का प्रकटीकरण होता है।

शिशु का अधिक रोना प्रत्येक अवस्था में स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। अतः जब शिशु भाषा का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दे तो उसके रोने में कमी आ जानी चाहिये। बालक की रोने की आदत बन जाना अहितकर है। इससे उनमें शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक सभी प्रकार का विकास प्रभावित होता है। अतः आयु वृद्धि के साथ-साथ बालक के क्रन्दन में कमी

आनी चाहिये, जब बालक पाँच वर्ष का हो जाये तो उसका अनावश्यक रोना बन्द हो जाना चाहिये।

2. शिशु का बलबलाना (Babbling)-आयु वृद्धि के साथ-साथ बच्चों का रोना कम हो जाता किन्तु उनके स्थान पर शिशु अस्पष्ट ध्वनियाँ निकालने लगता है, जिसे 'बलबलाना' कहते हैं। बलबलाने से ही बालक में शब्दोच्चारण का विकास होता है पहले माह के अन्त से ही बालक कुछ सरल ध्वनियों निकालने लगता है। स्पष्ट बिलबिलाहट दो माह की आयु से प्रारम्भ हो जाती है और लगभग 14 वर्ष की आयु तक चलती रहती है। बलबलाने से बालक का स्वरयन्त्र (Larynx) परिपक्व होता है। बलबलाने के प्रारम्भिक अवस्था में बालक एक ही ध्वनि की पुनरावृत्ति करता है। प्रारम्भ में बालक स्वरों को फिर बाद में व्यंजनों को उच्चारित करता है। बालक ध्वनियों का उच्चारण अन्य लोगों द्वारा बोले गये शब्दों को सुनकर करता है। प्रारम्भ में ही जब वह स्वरों को दोहराता है तो उसे आनन्द की अनुभूति होती है; जैसे-वह प्रारम्भ में बा, भा, पा, ना आदि स्वरों को दोहराता है तो उन्हीं से बाद में बाबा, मामा, पापा, नाना आदि शब्दों का विकास होता है।

बलबलाने की क्रिया अनुकरण पर आधारित होती है। इससे बालक अपने माता-पिता तथा आसपास रहने वाले व्यक्तियों के द्वारा बोले गये शब्दों का वह निरन्तर अनुकरण करता रहता है और फिर स्वयं भी उन्हें ध्वनियों को दोहराता है। अतः धीरे-धीरे सम्बद्धता (Conditioning) के आधार पर वह इन शब्दों का अर्थ भी समझने लगता है।

कुछ विद्वानों का मानना है कि बलबलाने की क्रिया बालक अनुकरण द्वारा नहीं करता वरन् इसलिये करता है कि उसके द्वारा उच्चारित ध्वनियाँ उसे प्रिय लगने लगती हैं। अतः वह खेल की भाति बलबलाने का कार्य करता है। बालकों को बलबलाने की क्रिया का कोई तात्कालिक महत्त्व नहीं होता किन्तु भाषा विकास मेंइसका दीर्घगामी परिणाम देखा जा सकता है। इस प्रकार बलबलाने की क्रिया से शिशु का स्वरयन्त्रपरिपक्व होता है। अतः बलबलाने से ही उसे शब्दोच्चारण का आधार मिलता है और धीरे-धीरे भाषा का विकास होता है।

3. शिशु का हावभाव (Gestures)-हाव भाव से तात्पर्य यह है कि शिशु अपने विभिन्न शारीरिक अंगों के माध्यम से अपने विचारों को प्रदर्शित करना। बालक के भाषा विकास में हावभाव भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। बालकों द्वारा हावभाव का प्रदर्शन भाषा के पूरक के रूप में किया जाता है। बच्चों में हावभाव की उत्पत्ति बलबलाने के साथ-साथ हो जाती है। बच्चा अपने हावभावों का प्रदर्शन, मुस्कराकर, हाथ फैलाकर, अंगुली दिखाकर तथा मूक भाषा में व्यक्त करता है। अतः बच्चों के लिये हावभाव, विचारों की अभिव्यक्ति का एक सुगम साधन है, जो शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त किया जाता है।

हावभाव का प्रदर्शन बड़े बालकों द्वारा भी किया जाता है किन्तु बच्चों और बालकों के हावभाव के प्रदर्शन में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। बच्चों का प्रदर्शन मूक होता है, जबकि बालकों का प्रदर्शन शब्दों के उच्चारण के साथ ही उनके अनुसार होता है। जैसे-जैसे बालक की भाषा का विकास होता जाता है वैसे-वैसे उसके हावभाव का प्रदर्शन कम हो जाता है। शिशु के जीवन में हावभाव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि हावभाव के अभाव में शिशु अपनी आवश्यकताओं का ज्ञान वयस्कों को नहीं करा सकता। इस भाषा विकास के साथ हावभावों में कमी आ जाती है किन्तु ये पूर्णतः समाप्त नहीं होते।

2. आकलन शक्ति का विकास (Development of Comprehension) - बालकों की वह क्षमता जिसके द्वारा वह दूसरों की क्रियाओं तथा हावभाव का अनुकरण कर लेता है, 'आकलन शक्ति' कहलाती है। हरलॉक के मतानुसार बालकों में आकलन शक्ति का विकास शब्दों के प्रयोग से पहले प्रारम्भ हो जाता है वह शब्दों को समझना पहले सीखता है और बाद में बोलना। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार शिशुओं में तीन-चार माह की आयु से आकलन शक्ति का विकास प्रारम्भ हो जाता है। चार माह का शिशु माँ को पहचानकर मुस्कराने लगता है। 7-8 माह का बालक शब्दों का अनुसरण करने लगता है और एक वर्ष का बालक सरल निर्देशों को समझने लगता है। पाँच वर्ष की अवस्था में बालक की आकलन शक्ति का पर्याप्त विकास हो जाता है।

बालकों की आकलन शक्ति में शब्दों के साथ-साथ हावभाव भी होते हैं। बालक उन वाक्यों और शब्दों को शीघ्रता से सीखा है, जिनके साय हावभाव भी सम्मिलित रहते हैं। बालक के बौद्धिक विकास तथा आकलन शक्ति का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। तीव बुद्धि बालकों की आकलन शक्ति अधिक विकसित होती है।

2. शब्द शक्ति का विकास (Development of Vocabulary) आयु वृद्धि और आकलन शक्ति के विकास से बालक का

शब्द भण्डार बढ़ता है। प्रारम्भ में वह संज्ञाओं (Nouns) का प्रयोग करता है। दो वर्ष का बालक लगभग 50% संज्ञा शब्द बोल लेता है। दो संज्ञा शब्द खिलौनों, खाने-पीने की चीजों, वस्त्रों और व्यक्तियों से सम्बन्धित होते हैं। सबसे पहले बालक साधारण क्रियासूचक शब्दों; जैसे-आओ, जाओ, खा, लो तथा दो का प्रयोग करता है। शिथु केवल इन शब्दों का प्रयोग ही नहीं करता अपितु उनका अर्थ भी समझता है। डेढ़ वर्ष की अवस्था में वह विशेषण शब्दों (Adjectives) का प्रयोग करने लगता है। ये विशेषण शब्द का प्रयोग भोज्य पदार्थों और खिलौनों से सम्बन्धित होते हैं। प्रारम्भ में ही बालकों द्वारा अच्छा, बुरा, गरम, ठण्डा आदि विशेषण शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है। बालक सर्वनाम शब्दों का प्रयोग तीन वर्ष की अवस्था में करने लगता है। प्रारम्भ में मैं, मेरा, तू, तेरा, यह वह तुम, तुझे, उसका, उसे आदि सर्वनामों का प्रयोग किया जाता है किन्तु प्रारम्भ में उसे यह ज्ञान नहीं होता कि उसे कौन-सा शब्द कब बोलना चाहिये ? अन्य प्रकार के शब्दों का प्रयोग वह पाँच-छः वर्ष की अवस्था में करता है। बालक की शब्दावली के विकास के साथ-साथ उसके शब्द भण्डार में भी वृद्धि होती है। 1 वर्ष की आयु में बालक की शब्दावली में केवल उच्च शब्द रहते हैं इसके बाद शब्द भण्डार में तीव्र गति से वृद्धि होती है। वह शब्द भण्डार की वृद्धि के समय केवल नये शब्द ही नहीं सीखता बल्कि पहले सीखे हुए शब्दों का नया अर्थ भी सीखता है। बालक द्वारा बोले गये प्रथम शब्द हॉलोफ्रेसस (Holophrases) कहलाते हैं क्योंकि एक शब्द में बालक का सम्पूर्ण आशय निहित होता है। स्मिय, शर्ली गैसेल तथा यम्पसन आदि वैज्ञानिकों ने बालकों के शब्द भण्डार तथा शब्द चयन के लिये अध्ययन किये और बताया कि डेढ़ वर्ष के बालक का शब्द भण्डार 10 शब्द, दो वर्ष के बालक का शब्द भण्डार 272 शब्द, ढाई वर्ष में 450 शब्द, तीन वर्ष की अवस्था में 900 शब्द तथा चार वर्ष की अवस्था में 1500 शब्दों का उच्चारण हो जाता है। पाँच वर्ष में यह बढ़कर 2000 तथा छः वर्ष में लगभग 2500 शब्दों का भण्डार हो जाता है। इस प्रकार दिन-प्रतिदिन उसका शब्द भण्डार बढ़ता जाता है। अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि बालिकाओं का शब्द भण्डार सभी अवस्थाओं में बालों की अपेक्षा अधिक रहता है।

बालकों के शब्द भण्डार के प्रकार-बालकों का शब्द दो प्रकार का माना गया है:-

(1) सामान्य शब्द भण्डार (General vocabulary)। (2) विशिष्ट शब्द भण्डार (Special vocabulary)। 1. सामान्य शब्द भण्डार (General vocabulary)-बालक सामान्य परिस्थितियों में जिन शब्दों का प्रयोग करता है वे उसके सामान्य शब्द कहलाते हैं। ये शब्द संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के सम्बन्धी होते हैं। जैसे-लेना, देना, आना, जाना, अच्छा, बुरा, मामा, नाना तथा पापा आदि।

2. विशिष्ट शब्द भण्डार (Special vocabulary)-विशिष्ट शब्द भण्डार के अन्तर्गत वे शब्द आते हैं, जिन्हें बालक विशेष अवसरों पर बोलता है। अधिकांशतः तीन या चार वर्ष की आयु में बालक विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करने लगता है। पाँच-छः वर्षों में विशिष्ट शब्दावली का पर्याप्त मात्रा में विकास हो जाता है। बालकों की विशिष्ट शब्दावली या शब्द भण्डार अनेक रूपों में प्रकट होती है

(i) शिष्टाचार के शब्द (Etiquette vocabulary)-जैसे-आप, जी, श्रीमान्, साहब, महाशय, कृपया तथा धन्यवाद आदि। इन शब्दों को बालक स्कूल जाने पर अधिक मात्रा में सीखता है। इन शब्दों द्वारा बड़ों के प्रति आदर प्रदर्शित करता है।

(ii) संख्यात्मक शब्द (Number vocabulary)-जैसे-गिनती, पहाड़े आदि। (i) रंगों से सम्बन्धित शब्द (Colour vocabulary)-जैसे-लाल, हरा, नीला, पीला आदि। चार वर्ष की आयु तक बालक तीन प्राथमिक रंगों-लाल, पीला तथा नीला उच्चारित करने लगता है।

(iv) समय सम्बन्धी शब्द (Time vocabulary)-जैसे-सुबह, शाम, रात, आज, कल, सिक्कों से सम्बन्धित शब्दों का परसों, दिन, वर्ष, माह आदि।

(v) धन से सम्बन्धित शब्द (Money vocabulary)-विभिन्न उच्चारण बालक पाँच वर्ष की अवस्था तक सीख जाता है।

(vi) अशिष्ट शब्द (Slang vocabulary)-जैसे-गाली-गलौज के गन्दे शब्दों का उच्चारण करना बालक पाँच से आठ वर्ष तक की अवस्था में सीख जाता है। संवेगात्मक तनाव एवं अस्थिरता की अवस्था में बालक विशिष्ट शब्दों का उच्चारण करता है।

4. वाक्य निर्माण शक्ति का विकास (Development of Sentence Formation) वाक्य निर्माण भाषा विकास की महत्त्वपूर्ण अक्स्था है क्योंकि वाक्यों के द्वारा बालक अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकता है। बालक वाक्य निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था में केवल एक शब्द वाक्य बोलता है। यह शब्द या तो संज्ञा या फिर क्रिया होता है। उदाहरण के लिये यदि बालक पापा शब्द का प्रयोग करता है तो उसका अर्थ है वह पापा के पास जाना चाहता है। इसी प्रकार यदि वह दूध की बोतल देखकर कहता है दे दो तो इसका तात्पर्य है वह दूध पीना चाहता है। ऐसे शब्द बालक एक से डेढ़ वर्ष की अवस्था के बीच अधिक बोलता है। अतः एक शब्दीय वाक्यों के साथ ही बालक हावभावों का प्रदर्शन करता है; जैसे-दूध की बोतल की ओर अँगुली करके कहता है दे दो। तीन-चार वर्ष की अवस्था में बालकों के वाक्यों में शब्दों की संख्या बढ़ जाती है। मैकार्थी Me Carthy) के अनुसार तीन वर्ष का बालक, तीन और चार वर्ष का बालक चार या पाँच शब्दों का प्रयोग अपने वाक्यों में करता है। ऐसे वाक्यों में संज्ञाओं, क्रियाओं और विशेषणों का मिश्रण होता है। इस अवस्था को 'अपूर्ण वाक्य की अवस्था या 'लघु वाक्य की अवस्था' कहा जाता जैसे-बालक कहता है पापा ऑफिस गये, मैंने दूध पिया आदि। इसी प्रकार विकासक्रम में पाँच-छः वर्ष तक का बालक 10 शब्दों तक वाक्य निर्माण का प्रयोग अपने वाक्यों में कर लेता है।

बालकों के वाक्य निर्माण में यह देखा गया है कि पहले बालक साधारण वाक्यों (Simple sentences) को बोलते हैं। फिर वे मिश्रित और संयुक्त वाक्यों का प्रयोग पाँच-छ: वर्ष की अवस्था में कर पाते हैं।

5. शुद्ध उच्चारण का विकास (Development of Correct Pronunciation) शुद्ध उच्चारण भाषा विकास की अन्तिम अवस्था है। इसमें बालक अपने व्याकरण सम्बन्धी दोषों को सुधारता है और उच्चारण शुद्ध करता है। तीन वर्ष की आयु तक बालक की भाषा में बहुत अधिक व्याकरण सम्बन्धी दोष पाये जाते हैं। विशेषकर बच्चे सर्वनाम शब्दों के प्रयोग, वर्तमान, भूतकाल तथा भविष्य काल के प्रयोग में त्रुटि करते हैं। इसके अतिरिक्त उनके संज्ञाओं के लिंग तथा वचन के प्रयोग में भी त्रुटि होती है। अतः यह आवश्यक है कि ठीक समय पर ही इन त्रुटियों को सुधार कर दिया जाये अन्यथा वे गलत शब्दों का उच्चारण करने लगते हैं। लेकिन बच्चे व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियाँ भी अपनी भाषा में करते हैं किन्तु इस त्रुटि का निवारण धीरे-धीरे स्कूल जाने पर हो जाता है। कुछ बालक शब्दोच्चारण में भी त्रुटि करते हैं; जैसे-श को स बोलते हैं। इसका कारण घर में माता-पिता तथा अन्य व्यक्ति का गलत शब्दोच्चारण करना होता है। कभी-कभी उनकी स्वरयन्त्र में खराबी होने से भी शब्दों का उच्चारण सही नहीं हो पाता है। छः-सात वर्ष की अवस्था में स्वस्यन्न भी पूर्ण परिपक्व हो जाता है तथा बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति भी इतनी अधिक विकसित हो जाती है कि वह शुद्ध उच्चारण द्वारा सुन्दर और शुद्ध भाषा का विकास कर सकता है।

बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं?

बालकों में भाषा सीखने की आश्चर्यजनक गुप्त जिज्ञासा होती है। बालक में भाषा सीखने के अनेक गुण होते हैं। इन गुणों की उत्पत्ति बालक की अपनी सहज वृत्ति के कारण होती है। हिन्दी अध्यापक द्वारा विद्यालय में तत्वों को पढ़ना-लिखना सिखाने का सामान्य रूप से असफल प्रयास करते हैं। प्रायः तब वे यह भूल जाते हैं कि बच्चे में भाषा सीखने की अद्भुत क्षमता होती है और वह अपनी भाषा एवं उसका व्याकरण पूर्णतया आत्मसात् करने के बाद ही विद्यालय आता है। यानी चार वर्ष की आयु का बालक भाषागत दृष्टि से एक वयस्क ही होता है बालक स्वयं ध्वनि-संरचना का जटिल संसार बिना किसी की सहायता के सुलझा लेता है। यही नहीं प्रत्येक बालक जानता है कि उसकी भाषा की ध्वनियों कैसे बोली जाएंगी अपितु यह भी कि ये ध्वनियाँ किस क्रम में आ सकती हैं और किस क्रम में नहीं ये सभी नियम बालक के मस्तिष्क में सुव्यवस्थित ढंग से उपलब्ध रहते हैं ? बालक सार्थक शब्द ही बोलता है, यदा-कदा नये-नये शब्द बनाता है भी है तो वे ध्वनि संरचना के नियमों का उल्लंघन नहीं करते परन्तु सोचिये कि 'प, फ, ब, भ, और म' में क्या अन्तर है ? सभी ओष्ठ्य ध्वनियाँ हैं। होठ तो दिखायी देते हैं। कुछ अनुकरण सम्भव है। 'क, ख, ग, घ और ङ के उच्चारण के अन्तर को बालक कैसे पकड़ता है और बालक को यह नियम कौन बताता है कि हिन्दी के अधिकांश शब्द 'कल, नल, काला, बाल, कील, दरवाजा, किताब, पेड़, फूल' आदि जैसे होंगे। अर्थात् उनकी संरचना 'व्यंजन-स्वर-व्यंजन-स्वर' होगी। परिणाम' शब्द की ध्वनि संरचना देखिये

पु+अ+्+इ+ण्+आ+मु

बालक यह कैसे पकड़ लेता है कि हिन्दी शब्दों के अन्त में 'अ' जो लिखित हिन्दी में सदैव दिखायी देता है नहीं बोला जायेगा ? 'कल' को 'क+अ+लू' बोलते हैं न कि 'क्+अ+ल+अ' जैसा कि लिखा गया है। इस ध्वनि-संरचना के बारे विचार कीजिये। हिन्दी-भाषी चार वर्ष की आयु के बच्चे के मस्तिष्क में हिन्दी ध्वनि-संरचना का क्या चित्र होगा यह समझना तो असम्भव है? लेकिन उसकी एक छोटी-सी झलक देखने का प्रयास हम कर सकते हैं, बच्चे की भाषा के आधार पर। बच्चा 'पापा, बाबा, मामा, चाचा, काका; काना, खाना; जाना, पाना; पानी, नानी; बाल, जाल; कील, नील आदि शब्दों में स्पष्ट अन्तर करता है। यह अन्तर कर पाना तभी सम्भव है, जब बच्चे में 'पु, ब, म्, क्, च, ख्, ज्,

न्, ल्' आदि को एक-दूसरे से अलग करने की क्षमता हो। आखिर 'कील' और 'नील' में क्या अन्तर है ? केवल 'क्' और 'न्' का। 'क्' कण्ठ से बोली जाने वाली ध्वनि है-अल्पप्राण है एवं अघोष है। 'न्' दन्त्य है 'नासिक' एवं सघोष। यह सभी न तो माँ-बाप जानते हैं, न रिश्तेदार।

बच्चा नियम पकड़ता है-बच्चा यह बस कैसे पकड़ लेता है ? और यह एक-दो ध्वनियों की बात नहीं। पूरी ध्वनि-व्यवस्था इन सूत्रों में बैंधी है। व्यंजन व्यवस्था देखिये। बच्चा यह कैसे समझ लेता है कि " अल्पप्राण, अघोष, ओष्ठ्य ध्वनि है और 'घ' महाप्राण, सघोष कण्ठ्य ध्वनि है। जैसा विवरण ऊपर दिया गया है वैसा तो बच्चा नहीं दे सकता परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह अन्तर उसके मस्तिष्क में है। वह 'पर' और 'घर' में अन्तर करता है। दोनों में 'अर' तो समान है। अन्तर केवल 'प्' और 'घ' का ही है। अल्पप्राण/महाप्राण में यह समझना होता है कि बच्चा नित्य नये अनेक शब्द बनाया करे पर इस नियम का उल्लंघन न होगा। 'इंक-विंक' में समस्यानीय नासिक व्यंजन 'कु' ही आयेगा। अनुनासिकता पूर्णतः अलग तथ्य है और इसका सम्बन्ध स्वरों से है व्यंजनों से नहीं । कुछ विशेष शब्दों में बच्चे को यह सीखना है कि स्वर की ध्वनि मुख के साथ-साथ नाक से भी निकलेगी यथा आँख, आँधी, मैं, हूँ, ऊँट एवं फूँकना आदि। कुछ शब्दों में तो बच्चे का अनुनासिक स्वरों एवं नासिक्य व्यंजनों में सूक्ष्म ध्वन्यात्मक अन्तर करना होता है; जैसे-हँस (स्वर अनुनासिकता) एवं हंस (नासिक व्यंजन, पक्षी)।

व्यंजन-स्वर-व्यंजन-स्वर-ध्वनि-व्यवस्था के अन्य नियम देखिये। प्रत्येक भाषा में संयुक्त ध्वनियों के अपने नियम होते हैं। भाषा प्रयोग करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इन्हें जानता है पर किसी को बता नहीं सकता। भाषा-वैज्ञानिक भी अनेक प्रकार के शोध के बाद उनकी झलक भी ही देख पाते हैं क्योंकि प्रधान नियम है 'व्यंजन-स्वर-व्यंजन-स्वर' इसलिये संयुक्त-ध्वनियाँ भी कम ही देखने में आती हैं और जब आती हैं तो उन पर अनेक प्रकार के अंकुश लगे रहते हैं। अंग्रेजी में शब्द के प्रारम्भ में तीन से अधिक व्यंजन ध्वनियाँ आ ही नहीं सकी और तीन भी केवल ऐसे शब्दों में मिलती टहैं-Strike, Street, Screen, Split, Squash आदि। अर्थात् अंग्रेजी का यह नियम है कि यदि शब्द के प्रारम्भ में तीज व्यंजन ध्वनियाँ होंगी तो -पहली व्यंजन केवल 'स्' दूसरी व्यंजन ध्वनि केवल 'प', 'त्' या 'क' -तसरी व्यंजन ध्वनि केवल 'य', 'र', 'ल' या " हिन्दी में भी 'स्त्री' में 'स्', 'त्' एवं 'ए" ही हैं। 'प्रकार', 'न्यूनता', 'स्नान', 'क्रम', 'ट्रक

"प्यास', 'व्याख्या' आदि के आरम्भ में केवल दो ही व्यंजन, ध्वनियाँ है। क्या हिन्दी में ऐसा सम्भव के कि शब्द के आरम्भ में तीन व्यंजन ध्वनियाँ आयें और उनका क्रम हो

सघोष महाप्राण

+

अघोष महाप्राण

+

अघोष अल्पप्राण

(यथा 'घ') + (यथा 'ख') + (यथा 'क')

आखिर बालक कैसे समझ लेते हैं कि 'हरकीच' जैसा शब्द हिन्दी में नहीं हो सकता? यही नहीं कि बच्चे हिन्दी के 41 व्यंजनों

को अलग कर लेते हैं वे इस नियम को भी सहज ही आत्मसात कर लेते हैं कि कौन-कौन सी व्यंजन ध्वनियों एक-दूसरे के साथ जुड़ सकती हैं ? सम्भव है कि हिन्दी का यह नियम है कि 'सघोष महाप्राण + अघोष महाप्राण-अघोष अल्पप्राण' वाला क्रम हिन्दी में नहीं हो सकता अर्थात् 'ठे', 'भ्युठा', ध्रुती', 'भूपचू' आदि हिन्दी में सम्भव नहीं। हिन्दी का शब्दकोष देखें 'शब्दों के प्रारम्भ में अधिकांश 'क' के साथ 'र' मिलेगा या 'श्' अर्थात् 'क्रम', 'क्षमा आदि। दो ही व्यंजन उसके बाद स्वर।

व्यंजन-स्वर', 'स्वर-व्यंजन' का क्रम बना रहे अर्थात् दो स्वर या दो व्यंजन साथ-साथ न आयें इस व्यवस्था के लिये अलग-अलग भाषाएँ अलग अलग प्रावधान करती हैं। बांग्ला में 'सीता का कहने के लिये केवल 'र' जोड़ते हैं, 'सीतार' । लेकिन 'राम का' कहने के लिये केवल 'र' जोड़ने से काम नहीं चलेगा क्योंकि 'राम' में दो व्यंजन साथ-साथ आ जायेंगे। इसलिये 'एर' का प्रयोग, 'र' से पहले स्वर, 'रामेर। अंग्रेजी में भी यही नियम भाषा की पूरी ध्वनि-संरचना पर फैला हुआ है। a boy कहते हैं लेकिन an egg: दो स्वरों के बीच 'न्' आ गया। car-park में दोनों 'र' का उच्चारण नहीं होता, इंग्लैण्ड की अंग्रेजी में। लेकिन car-engine में 'र' का उच्चारण होगा। स्टेशन' को पंजाब में 'स्टेशन, उत्तर प्रदेश में 'इसूटेशन' एवं हरियाणा में 'स्टेशन' । दो व्यंजन साथ-साथ भाते नहीं हमें। बोलने को तो बोल ही सकते हैं। अंग्रेजी में तो दो स्वर साथ होने पर " प्रायः आसमान से टपक पड़ता है, जैसे-India and Pakistan में India के बाद ए आयेगा उच्चारण में वैसे ही idea of में idea के बाद।

बच्चा प्रारम्भ में भाषा कैसे सीखता है?--ध्वनि-संरचना के संसार की यह एक छोटी-सी झलक है। बच्चा यह सब स्वयं कैसे सीख लेता है, चार वर्ष की छोटी-सी आयु में बालक अनुकरण से तो नहीं सीख सकता। अनुकरण उस बात का हो जो कोई दिखा सके या बता सके। ये नियम तो भाषा वैज्ञानिक भी ठीक से नहीं समझते। इस प्रकार का भाषागत् ज्ञान होने के लिये खासकर दो वस्तुएँ होनी आवश्यक लगती हैं। भाषा सीखने की सहजात क्षमता और ऐसा वातावरण जिसमें भाषा तो खूब हो लेकिन स्पष्ट तौर पर नियम एवं व्याकरण न हो। वातावरण ऐसा कि बच्चे को कुछ बोझ अनुभव न हो, निरस्त न लगे तथा मजबूरी न हो। बच्चे का ध्यान मौके की बात पर हो, न कि व्याकरण के नियों एवं भाषा की शुद्धता पर। बच्चे के लिये हम किसी विशेष भाषागत वातावरण की रचना नहीं करते। स्वाभाविक, सहज शब्दों में भाषा का प्रयोग करते हैं उससे बातचीत करते हैं, उसकी बातचीत कितनी भी गलत क्यों न हो प्यार से सुनते हैं एवं उसको अन्य लोगों की बातचीत चाहे उसे समझ आये न आये सुनने की पूर्ण स्वतंत्रता देते हैं। सामाजिक बातचीत के अथाह समुद्र से बालक स्वयं ही एक सुव्यवस्थित व्याकरण एवं शब्द ढूँढ लेता है। ये कहाँ तक उचित है कि ऐसे बच्चे को हम विद्यालय आजे पर वर्णमाला, मात्रा एवं वर्तनी लिखना प्रारम्भ करते हैं ?

बालक के भाषा सीखने में अनुकरण और अभ्यास का महत्त्व

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बच्चों के भाषा सीखने की प्रक्रिया में अनुकरण और अभ्यास का सर्वप्रमुख एवं सर्वाधिक महत्त्व है। बालक शैशवावस्था से ही अनुकरण की स्वाभाविक वृत्ति धारण किये रहता है। जब वह अपनी माँ, परिजन अथवा निकटस्थ लोगों से किसी ध्वनि को सुनता है तो वह उसका अनुकरण करता है। प्रारम्भ में वह ध्वनियों का यथारूप अनुकरण नहीं कर पाता। प्रायः वह टूटे-फूटे शब्दों का उच्चारण करता है, जिनको समझना कठिन होता है किन्तु जब वह उस ध्वनि को या शब्द को बार-बार सुनकर बार-बार बोलने का प्रयास करता है तो वह सही उच्चारण करने लगता है। इस अवस्था में वह 'रोटी' को 'टोटी' कहता है। पिलाओं' कहकर 'पानी पीने की इच्छा व्यक्त करता है और कपड़े को 'पल्लो' कहता है। 'दूध' को 'दू' कहकर काम चलाता है। इसी प्रकार निरन्तर प्रयास के द्वारा वह बोलना सीखता है।

जब बच्चा शैशवावस्था से बाल्यावस्था में प्रवेश करता है तब उसकी जिह्वा दैनिक जीवन में प्रचलित लगभग सभी वर्णों के उच्चारण में अभ्यस्त हो जाती है। वह दूसरों की बात सुनकर समझने लगता है और अपने भावों और विचारों को मौखिक भाषा में व्यक्त करने लगता तो वह मौखिक भाषा को बोलने एवं समझने में सक्षम हो जाता है। एक वाक्य में कहें मौखिक भाषा में पारंगत होने के पश्चात् वह लिखित भाषा की ओर उन्मुख होता है। लिखित भाषा में भी प्रथमतः वह वाचन करना सीखता है, जब कोई बालक पठन या वाचन करता है तो उस समय वह एक पुस्तक या पत्रिका या साइन बोर्ड या कॉपी को देख रहा होता है। प्रायः उसके समक्ष पटीय वस्तु के रूप में सफेद कागज पर बने हुए कुछ चिह्न होते हैं। ये चिह्न प्रायः गहरे रंग की स्याही में बने होते हैं। वाचन के समय बस यही निशान ही होते हैं किन्तु इन्हें पढ़ते ही वाचक का चेहरा लाल हो सकता है, खिल सकता है

या पीला पड़ सकता है। यह प्रतिक्रिया उन चिह्नों को दिये गये अर्थ पर निर्भर है। ये अर्थ बालक के मस्तिष्क में रहते हैं, न कि चिह्नों में। अतः यह कहा जा सकता है कि "वाचन वह क्रिया है जिसमें प्रतीक, ध्वनि और अर्थ साथ-साथ चलते हैं।"

प्रारम्भ में बालकों को शब्दों को पहचानने पर बल देना पड़ता है। बालक अपने चतुर्दिक वातावरण में भाषा के उच्चारित रूपों को सुनता रहता है उसका दृष्टिपरक प्रतीक भाषा का लिपिबद्ध मुद्रित रूप होता है।

अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों

अधिगम प्राणी की सहज क्रिया है। जन्म से ही वह कुछ न कुछ सीखता रहता है। उसके सीखने की मात्रा तथा कुशलता पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। सीखने को प्रभावित करने वाले कारक (Influencing Factors of Learning) इस प्रकार है- मास मणको

1) विषय-सामग्री का स्वरूप-सीखने की क्रिया पर सीखी जाने वाली विषय-सामग्री का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। कठिन और अर्थहीन सामग्री की अपेक्षा सरल और अर्थपूर्ण सामग्री अधिक शीघ्रता से सरलता से सीख ली जाती है। इसी प्रकार अनियोजित सामग्री की तुलना में सरल से कठिन की ओर सिद्धांत पर नियोजित सामग्री सीखने की क्रिया को सरलता प्रदान करती है।

(2) वातावरण-अधिगम और वातावरण का निकट सम्बन्ध है। बालक का परिवार, समुदाय, कक्षा तथा विद्यालय सभी अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। सीखने की क्रिया पर न केवल कक्षा के अन्दर के वरन बाहर के वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है| कक्षा के बाहर का वातावरण शान्त होना चाहिए। निरन्तर शोर-गुल से छत्रों का ध्यान सीखने की क्रिया से हट जाता है। यदि कक्षा के अन्दर छात्रों को बैठने के लिये पर्याप्त स्थान नहीं है और यदि उसमें वायु और प्रकाश की कमी है तो छत्र थोड़ी ही देर में थकान का अनुभव करने लगते हैं। परिणामतः उनकी सीखने में रुचि समाप्त हो जाती है। कक्षा का 'मनोवैज्ञानिक वातावरण' भी सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। यदि छासे एक-दूसरे के प्रति सहयोग और सहानुभूति की भावना है; तो सीखने की प्रक्रिया को आगे बढने योग मिलता है। यदि परिवार कक्षा तथा विद्यालय का वातावरण दूषित है तथा बालक के विद्यालय े खेलने-कूदने की समुचित व्यवस्था नहीं है तो बालक के सीखने में बाधा उत्पन्न होती है। परिणाम वह उपयुक्तमात्रा में सीख नहीं पाता है। बालकों को किसी भी क्रिया या ज्ञान को सीखने के लिये आवश्यक है कि वे मानसिक रूप से तैयार हों अर्थात् उनके लिये मनोवैज्ञानिक परिस्थिति उत्पन्न को जाये।

3) वंशानुक्रम-बालकों में निहित अनेक गुण एवं क्षमताएँ उनके वंशानुक्रम की देन होती है। बालकों के अधिगम पर इन वंशानुक्रम की विशेषताओं का गहन पड़ता है या वंशानुक्रम की विशेषता बालक के अधिगम को प्रभावित करती है।

(4) बालकों का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य-जो छात्र शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होते हैं, वे सीखने में रुचि लेते हैं और शीघ्र सीखते हैं। इसके विपरीत शारीरिक या मानसिक रोगों से पीड़ित छात्र सीखने में किसी प्रकार की रुचि नहीं लेते हैं। फलतः वे किसी बात को बहुत देर में और कम सीख पाते हैं।

(5) परिपक्वता-शारीरिक और मानसिक परिपक्वता वाले छात्र नये पाठ को सीखने के लिये सदैव तत्पर और इच्छुक रहते हैं। अतः वे सीखने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं करते हैं। यदि छात्रों में शारीरिक और मानसिक परिपक्वता नहीं है, तो सीखने में उनके समय और शक्तिका नाश होता है। Kolesnik के अनुसार “परिपक्वता और सीखना पृथक् प्रक्रिया नहीं हैं, वरन् एक-दूसरे से अविच्छिन्न रूप में सम्बद्ध और एक-दूसरे पर निर्भर हैं।" परिपक्वता और अधिगम का अन्तर्सम्बन्ध है, दोनों एक-दूसरे के सहायक तथा बाधक भी हैं।

उदाहरणार्थ-एक आठ-दस वर्ष का बालक साइकिल चलाना सहज ही सीख सकता है किन्तु भारी वाहन नहीं सीख सकता। साइकिल चलाना सीखने की स्थिति में वह शारीरिक और मानसिक दृष्टि से परिपक्व है किन्तु भारी वाहन चलाना सीखने में वह दोनों दृष्टि से अपरिपक्व है। इस प्रकार परिपक्वता व अधिगम दोनों का घनिष्ठ पिस्परक सम्बन्ध है। बालकों को सिखाई जाने

वाली क्रियायें उनकी आयु, स्तर तथा क्षमता के अनुकूल होनी चाहिए।

(6) सीखने का समय व थकान-सीखने का समय सीखने की क्रिया को प्रभावित करता है, उदाहरणार्थ, छात्र विद्यालय जब जाते हैं, तब उनमें स्फूर्ति होती है। अतः उनको सीखने में सुगमता होती है, जैसे-जैसे शिक्षण के घण्टे बीते जाते हैं वैसे-वैसे उनकी स्फूर्ति में शिथिलता आती जाती है और वे थकान का अनुभव करने लगते हैं। परिणामतः उनकी सीखने की क्रिया मंद हो जाती है।

(7) सीखने की इच्छा-यदि छात्रों में किसी बात को सीखने की इच्छा होती है तो वे प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसे सीख लेते हैं। अतः अध्यापक का एक प्रमुख कर्त्तव्य यह है कि वह छात्रों की इच्छा शक्ति को दृढ़ बनाये। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उसे उनकी रुचि और जिज्ञासा को जागत करना चाहिए।

(8) प्रेरणा-सीखने की प्रक्रिया को सुदृढ़ और कमजोर बनाने में प्रेरकों का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रेरक, बालों को नई बातें सीखने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। अतः यदि अध्यापक चाहता है कि उसके छात्र नये पाठ को सीखें तो वह प्रशंसा, प्रोत्साहन, प्रतिद्वन्द्विता आदि विधियों का प्रयोग करके उनको प्रेरित करे। स्टीफेंस के अनुसार-"शिक्षक के पास जितने भी साधन उपलब्ध हैं, उनमें प्रेरणा संभवतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।"

(9) सीखने की विधि-सीखने की विधि का सम्बन्ध छात्र और विषय दोनों से है यह विधि जितनी अधिक रुचिकर और उपयुक्त होती है, सीखना उतना ही सरल होता है। इसलिये, प्रारम्भिक कक्षाओं में खेल और 'करके सीखने की विधियों का और उच्च कक्षाओं में पूर्ण', 'सामूहिक' और 'सहसम्बन्ध' विधियों का प्रयोग किय जाता है। अध्यापक किस प्रकार छात्रों को किसी ज्ञान को प्रदान करता है, यह सब अधिगम पर निर्भर करता है। प्रत्येक छात्र एक ही विधि से प्रभावित नहीं होता है। यदि बालक को अवैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक पद्धतियों से किसी बात को जबर सिखाया जा रहा है तो बालक सीखने की उस क्रिया में तनिक भी रुचि नहीं लेगा और ऐसी स्थिति में सीखना अत्यन्त कठिन एवं नीरस हो जाता है।

(10) बुद्धि-छात्र के अधिगम को प्रभावित करने वाला एक अन्य महत्वपूर्ण कारक बुद्धि है। तीव्र बुद्धि वाला बालक: मन्द बुद्धि वाले बालक की तुलना में किसी भी कार्य को जल्दी सीख जाता है बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य उच्च स्तर का सकारात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है।

(11) पाठ्यसहगामी क्रियाएँ-शिक्षा मनोविज्ञान के विकास के कारण पाठ्यक्रम में अनेक महत्वपूर्ण सहगामी-क्रियाओं-वाद-विवाद प्रतियोगिता, निबंध, लेखन, कहानी प्रतियोगिता अब्त्याक्षरी, बालवीर, शैक्षिक क्षमण आदि को स्थान दिया जाने लगा है।

(12) अध्यापक एवं अभिभावक की भूमिका अधिगम उस समय तक प्रभावशाली ग से काम नहीं कर सकता, जब तक कि अध्यापक एवं अभिभावक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह नहीं करते हैं। इस क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण अनुसन्धान हो रहे हैं। उन्हें चाहिए कि शिक्षा के नवीनतम अन्वेषों के सम्पर्क में रहें और शिक्षण की नवीनतम विधियों का प्रयोग करें। ऐसी स्थिति में उनका प्रभाव अच्छा होगा। वे बालक में ज्ञान तथा क्रिया का अधिगम कराने के लिये उचित वातावरण को तैयार करते हैं।

(**13) अध्यापक से सम्बन्धित कारक**-छात्रों की अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष व्यवहार छात्रों के अधिगम पर प्रभाव डालता है। अध्यापक का व्यक्तित्व, उपयुक्त पाठ योजना, नियोजन, विषय विशेषज्ञता, वैयक्तिक विभिन्नताओं का ज्ञान, बाल-केन्द्रित शिक्षा बनाना, पढ़ाने की इच्छा, उसकी योग्यता, कर्तव्यनिष्ठता. उसके पढ़ाने की विधि तथा व्यवहार और उसके सद्गुणों आदि की छाप छात्रों की रुचि को प्रभावित करती है अतः शिक्षक को मनोविज्ञान, उचित शिक्षण-विधियों एवं विभिन्नताओं का अपेक्षित ज्ञान होना चाहिए।

(14) सम्पूर्ण परिस्थिति-बालक के सीखने को प्रभावित करने वाले जितने तत्व हैं, वे उस पर पृथक रूप से प्रभाव न डालकर सामूहिक रूप से प्रभाव डालते हैं। अतः एक सम्पूर्ण परिस्थिति का होना आवश्यक है जिसमें सीखने के सभी तत्व और दशायें विद्यमान हों। विद्यालय की सम्पूर्ण परिस्थिति का बालक के बाह्य जीवन और समाज के सामान्य जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए। रायबर्न के अनुसार-"उस सम्पूर्ण परिस्थिति का, जिसमें बालक अपने को विद्यालय में पाता है, जीवन से जितना ही अधिक सम्बन्ध होता है, उतना ही अधिक सफल और स्थायी उसका सीखना होता है।" "The more the total situation

in which the child finds himself when in school, is related to life, the more fruitful and permanent his learning will be." -W. M. Ryburn.

सीखने की प्रभावशाली विधियाँ

(Effective Methods of Learning)

किसी नई क्रिया या नये पाठ को सीखने के लिये विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ उन विधियों में से केवल उन विधियों का वर्णन किया जा रहा है जिनको मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर अधिक उपयोगी और प्रभावशाली पाया गया है। ये विधियाँ अनलिखित है अधिगम या सीखने में कहानी विधि का प्रयोग बड़े प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है। छोटे बालक कहानी सुनने में एक विशेष आनन्द का अनुभव करते हैं अतः पाठ्य सामग्री को कहानी के

(1) कहानी विधि

माध्यम से सुनाकर बालकों में पढ़ने के प्रति रुचि जाग्रत की जा सकती है। गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, महात्मा गांधी, शिवाजी आदि महापुरुषों की कथाएं रोचक ढंग से बालकों के सम्मुख प्रस्तुत की जानी चाहिए। कहानी सुनाते समय अध्यापक को भाषा की सरलता और प्राह पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कहानी अधिक लम्बी भी नहीं होनी चाहिए और इसके माध्यम से बालर्को को हल करने के लिये प्रश्न भी दिये जा सकते हैं।

कहानी विधि का महत्व-प्रसिद्ध विद्वान एफ. आर. वार्टस ने कहानी विधि के महत्व पर प्रका डालते हुये लिखा है-"कहानी 13 वर्ष की अवस्था तक के बालों को इतिहास पढ़ाने का मुख्य साधन होना चाहिए।" भूगोल के शिक्षण में भी कहानी विधि का प्रयोग किया जा सकता है। कहानी विधि द्वारा बालकों का भौतिक विकास भी किया जा सकता है व उन्हें प्रभावी अधिगम भी कराया जा सकता है।

कहानी विधि में रखी जाने वाल सावधानियां-

1. कहानी सुनाने से पूर्व उसका चुनाव सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। कहानी छात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।

2. कहानी जिस ऐतिहासिक या भौगोलिक तथ्य से सम्बन्धित हो उसकी अध्यापक को पूर्ण जानकारी होनी चाहिए।

3. अध्यापक को चाहिए कि वह कहानी को कभी भी किसी पुस्तक से पढ़कर न सुनायें।

4. कहानी सुनाने में कालक्रम का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए।

5. कहानी के मध्य में आवश्यकतानुसार व यथास्थान सहायक सामग्री का प्रयोग किया जा सकता है। प्राथमिक स्तर के छात्र चित्रों के माध्यम से कहानी सुनने में विशेष रुचि लेते हैं।

6. कहानी सुनाते समय अध्यापक उसमें पूर्ण रुचि ले व उसे तन्मय होकर सुनाये।।

7. कहानी की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण तथा छात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल हो।

8. कहानी की विषयवस्तु को छात्रों के सामाजिक जीवन की परिस्थितियों से सम्बन्धित करना

(2) अभिनय विधि

यह शिक्षण का सर्वाधिक सजीव एवं प्रभावशाली विधियों में से एक है। इसमें किसी घटना या पाठ्यवस्तु को जीवित रूप में

प्रदर्शित करके छात्रों की सृजनात्मक शक्तियों का विकास किया जा सकता है और इससे छात्रों को स्व-क्रिया द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के पर्याप्त अवसर भी मिलते हैं। यह विधि छात्रों में आत्मविश्वास तथा आत्माभिव्यंजन की शक्तियों का विकास करती है।

अभिनय विधि का महत्त्व-इस अभिनय या नाटकीकरण विधि का ऐतिहासिक अध्ययन में महत्व बताते हुये श्री मयूर ने लिखा है -"शिक्षा में शिक्षक समय-समय पर आवश्यकतानुसार पाठ में रोचकता तथा सरसता लाने के लिये या सूक्ष्म भावनाओं को प्रदर्शित करने एवं छात्रों को वास्तविक, स्थिति का ज्ञान कराने के लिये अभिनय विधि का प्रयोग करते हैं। अभिनय करने से छात्रों की भावना और कल्पना शक्ति का विकास होता है। अभिनय करके छात्र स्वयं जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का अनुभव प्राप्त करते हैं। इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य के नियमों, सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वास, ग्रामीण समस्याओं

आदि पर अभिनय विधि का प्रयोग बड़ी सफलता के साथ किया जा सकता है। छोटी कक्षाओं में अभिनय विधि का विशेष महत्व होता है क्योंकि बालक इस स्तर पर खेल-खेल में ज्ञान प्राप्त करने में विशेष आनन्द लेते हैं और उनकी झिझक दूर हो जाती है तथा आत्माभिव्यक्तिके अवसर प्राप्त होने से अभिनय विधि में रखी जाने योग्य सावधानियाँ-

(1) अभिनय विधि का प्रयोग आवश्यकता अभिव्यंजना शक्तिका विकास होता है।

अधिक न किया जाये।

(2) इस विधि के प्रयोग के पूर्व पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए। (3) सामाजिक जीवन की विभिन्न समस्याओं को भी अभिनय किया जाना चाहिए।

(4) नाटक ऐसा हो जिसमें कक्षा के अधिक से अधिक छात्र भाग ले सकें।

(5) जिस घटना या तथ्य को अभिनय विधि से प्रदर्शित करना हो, उसके विषय में अध्यापक को पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

(6) अभिनय के समय वास्तविकता का ध्यान अवश्य रखा जाये।

(7) बालकों को उचित ढंग से निर्देश भी दिये जाने चाहिए।

(3) खेल विधि

छोटे बालकों की यह स्वभावगत प्रवृत्ति होती है कि वे खेल में विशेष रुचि लेते हैं और हर समय खेलना ही अधिक पसन्द करते हैं और यदि उनके खेल में बाधा डाली जाये तो वे क्रोधित होने लगते हैं। इस प्रकार खेल बालकों की स्वाभाविकता, स्वतन्त्रता और आनन्द से परिपूर्ण एक मनोरंजक क्रिया है। खेल के अभाव में बालकों का शारीरिक व मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। अतः पर्यावरण शिक्षण में भी बालकों को खेल विधि से अवबोध या अधिगम कराना बहुत सरल हो जाता है। कुक महोदय ने कहा है कि-खेल विधि पर ही समस्त विषयों का शिक्षण आधारित होना चाहिए। उनके अनुसार खेल द्वारा शिक्षा देने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि कठिन विषय भी बालों के लिये बड़ा सरल बन जाता है। अतः खेल विधि वास्तव में एक अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विधि है क्योंकि इसमें बालकों को अपनी रुचि तथा मानसिक क्षमता के अनुसार काम करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है और उनकी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक शक्तियाँ गतिशील हो जाती हैं तथा बालक अपने ज्ञान का प्रयोग जीवन की यथार्थ परिस्थितियों में करना सीखता है।

विद्वान स्टर्न के शब्दों में-"जो कार्य हम स्वेच्छा से स्वतन्त्रतापूर्ण वातावरण में करें वही खेल है।" अतः खेल बालकों को स्वतन्त्र वातावरण प्रदान करता है।

खेल विधि में रखी जाने योग्य सावधानियां-

(1) इस विधि में किसी भी विषय का शिक्षण करते समय बालकों को यथासम्भव स्वतन्त्रता दी जाये। खेल विधि में बन्धन रहने से उसका उद्देश्य ही नष्टहो जाता है।

(2) खेल और पाठ्य सामग्री का समन्वय विशेष सावधानी से करना चाहिए।

(3) खेल विधि का प्रयोग करते समय बालकों की रुचि व शारीरिक क्षमता का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए।

(4) यथासम्भव खेल इस प्रकार के हों जिनका सम्बन्ध, पाठ्य-सहगामी व विषय के अतिरिक्त बालक के दैनिक जीवन से भी हो। किसी घटन या वस्तु को ध्यान या सावधानी से देखना। अतः जब हम

(4) अवलोकन विधि

निरीक्षण का अर्थ किसी वस्तु का निरीक्षण करते हैं तो उस वस्तु पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं और यदि निरीक्षण है

ध्यानपूर्वक नहीं होता है तो वह निरीक्षण न होकर केवल देखना ही होता है। योकम तथा सिम्पसन के

अनुसार-"निरीक्षण ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी सीखने की विधि है जिसमें व्यक्ति को अपने चारों ओर के संसार का ज्ञान प्राप्त होता है।"

अवलोकन विधि का महत्व-

(1) यह मनोवैज्ञानिक विधि है, जिससे छात्रों की ज्ञानेन्द्रियों का विकास होता है।

(2) इससे छात्रों की चिंतन व तर्क शक्तिका विकास होता है।

(3) इसके प्रयोग से बालक के ज्ञान भण्डार की स्थायी वृद्धि होती है।

(4) इस विधि से छात्रों में रुचि व जिज्ञासा स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है। (5) स्थूल भौतिक व जैविक वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये यह सर्वोत्तम विधि है। (6) यह विधि बाह्य जगत का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है।

अवलोकन विधि में रखी जाने योग्य सावधानियां-(1) जिन वस्तुओं व परिस्थितियों का निरीक्षप करना है, वे बालकों के मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।

(2) परिस्थितियों यथासम्भव छात्रों के जीवन से सम्बन्धित होनी चाहिए।

(3) छात्रों को निरीक्षण के लिये पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए। (4) निरीक्षण/अवलोकन के पश्चात् जो निष्कर्ष निकाले जायें, उनमें सावधानी रखी जाय। (5) जब छात्र निरीक्षण कर रहे हों, तब अध्यापक को उनका उचित ढंग से मार्गदर्शन करना

(6) अध्यापक द्वारा छात्रों की प्रत्येक जिज्ञासा को शान्त करना चाहिए।

(7) निरीक्षण को केवल मनोरंजन का साधन न बनाकर विषयवस्तु से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्ति का साधन माना जाना चाहिए।

(5) वाद-विवाद विधि _दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा किये गये विचारशील चिन्तन को वाद-विवाद कहते हैं। वास्तव में वाद-विवाद सामूहिक निर्णय लेने अथवा विचार निर्माण करने की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। अन्य वाद-विवाद विधि का महत्व- (1) यह विधि छात्रों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति का विकास करती है।

शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सोद्देश्य, सार्थक, तार्किक व ज्ञानयुक्तविचार-विमर्श ही वाद-विवाद है।

(2) इस विधि से छात्रों में तार्किक शक्तिका समुचित विकास होता है।

(3) यह विधि छात्रों में स्वतंत्र अभिव्यक्ति पर बल देती है।

(4) यह विधि छात्रों की व्यक्तिगत वैचारिक विभिन्नताओं पर आधारित है।

(5) इस विधि से छात्र सोद्देश्यपूर्ण अध्ययन करना सीखते हैं। (6) यह विधि क्रियाशीलता के सिद्धांत पर आधारित है

(7)यह विधि छात्रों के मानसिक अनुशासन एवं सहयोगितापूर्ण प्रतिस्पर्धा का विकास करती है। (8) इस विधि द्वारा छात्रों में विश्लेषण करने की प्रवृत्ति का विकास होता है। (9) इस विधि के माध्यम से छात्र विषय-वस्तु का चयन एवं संगठन करना सीखते हैं।

(10) इस विधि से लोकतन्त्र के लिये उपयुक्त नागरिकता का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

वाद-विवाद विधि में रखी जाने योग्य सावधानियाँ-

(1) इसमें सभी छात्रों को अपने स्वतन्त्र विचार व्यक्त करने का अवसर प्रदान करना चाहिए।

(2) वाद-विवाद का प्रारम्भ एवं तैयारी का संपादन भली-भाँति किया जाना चाहिए। (3) वाद-विवाद कराने से पूर्व 'समस्या' का चयन सही प्रकार से किया जाना चाहिए। (4) वाद-विवाद को सुविधा की दृष्टि से छोटे-छोटे समूहों में विभक्त किया जा सकता है।

(5) वाद-विवाद के मध्य अप्रासंगिक अथवा व्यर्थ का तर्क नहीं होना चाहिए। (6) प्रत्येक समूह के वाद-विवाद का निष्कर्ष प्रतिवेदन के रूप में व्यक्तकरना चाहिए और पुनः समस्या का सही प्रतिवेदन जिस पर सभी छात्र एकमत हों। (7) प्रतिवेदन मूल्यांकन सही प्रकार से किया जाना चाहिए व इससे निष्पक्षता का ध्यान रखना चाहिए।

(6) भ्रमण विधि

इस विधि के जन्मदाता पेस्टॉलोजी हैं। यह प्रकृतिवादी दर्शन शिक्षा पर आधारित है। शिक्षाशास्त्रियों ने कहा है-"पर्यटन बालक की शिक्षा का महत्वपूर्ण साधन है।"

वास्तव में पर्यटन/क्षमण ऐसा साधन है जिसके द्वारा छात्र अपे ज्ञान को प्रत्यक्ष देखकर स्थायी एवं सुदृक बनाता है। जैसे-विद्युत उत्पादन के लिये बिजलीघर ले जाकर उसे दिखाना। इस विधि से बालक को सूक्ष्म निरीक्षण करने, अपनी मानसिक शक्तियों का विकास करने, अपनी जिज्ञासा एवं अन्वेषण प्रवृत्ति का उचित उपयोग करने का अवसर प्राप्त होता है। इसके साथ ही उसके दृष्टिकोण में वैज्ञानिकता व रचनात्मकता आती है। इसके आयोजन के लिये उचित स्थान का चयन आवश्यक है। इसमें वैज्ञानिक तथ्यों, नियमों, घटनाओं और प्रक्रियाओं का अवलोकन किया जाये ताकि उनसे कुछ परिणाम निकाले जा सकें। स्थान के चुनाव के सम्बन्ध में प्राकृतिक, सामाजिक, औद्योगिक क्षेत्र देखना आवश्यक है। तालाब, पर्वत श्रृंखला, वाटिकायें, नदियाँ, मुर्गी-पालन केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र, रेलवे स्टेशन, आकाशवाणी, अभयारण्य व राष्ट्रीय उद्यान आदि को भी बालों को क्षमण द्वारा दिखाया जा सकता है।

भ्रमण विधि का महत्व-(1) भ्रमण विधि अध्यापन की नीरसता को दूर कर उसे सरस और आकर्षक बनाती है।

(2) भ्रमण द्वारा बालों की सामान्य बुद्धि का विकास होता है। (3) यह पाठ्यक्रम के अनुभवों को समृद्ध एवं स्थायी बनाती है।

(4) इससे बालक सामाजिक व प्राकृतिक वातावरण का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते हैं। (5) इससे छात्रों को सामाजिक संस्थाओं एवं प्राकृतिक वस्तुओं का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है।

(6) इससे छात्रों में निरीक्षण शक्तिका विकास होता है।

(7) इससे छात्रों की गलत धारणा नष्ट होती हैं, उनका ज्ञान पूर्ण व अद्यतन होता है। (8) इसकी सहायता से मौखिक पाठों की पूर्ति रोचक ढंग से होती है।

(9) भूगोल जैसे अनेक विषयों के प्रति छात्र जिस नीरसता का अनुभव करते हैं, वह इस विधि के प्रयोग से पूर्ण रूप से दूर हो जाती है।

(10) यह विधि छात्रों की जिज्ञासा को तृप्त करती है।

(11) इस विधि द्वारा छात्र प्रकृति के प्रत्यक्ष संपर्क में आते हैं। ठीक प्रकार से समझ नहीं

(12) यह विधि कक्षा कार्य की पूरक होती है। जो बातें छात्र कक्षा में पाते हैं, वे उन्हें प्रत्यक्ष देखकर आसानी से समझ जाते हैं।
भ्रमण विधि में रखी जाने योग्य सावधानियां-(1) छात्रों को जिस स्थान का क्षमण कराना हो वहा यह देखना आवश्यक है कि क्या वहाँ जाने से शिक्षा का उद्देश्य पूरा होता है। (2) यह पहले से ही निश्चित कर लिया जाये कि क्षमण के समय किन-किन स्थलों का भ्रमण करना है

(3) श्रमण पर जाने से पूर्व क्षमण का काल निश्चित कर लेना चाहिए। (4) प्राथमिक स्तर के छात्रों को सर्वप्रथम आस-पास के स्थल का ही क्षमण कराया जाये।

(5) क्षमण छात्रों के लिये अधिक व्यय पूर्ति न हो। (6) भमण के समय छात्रों को प्रश्न करने या किसी तथ्य को समझने की पूरी-पूरी छूट दी

(7) छात्रों को निरीक्षण के पूरे-पूरे अवसर दिये जायें।

(8) यदि किसी मिल, उद्योग, न्यायालय आदि को दिखाना हो तो प्रबन्धकों से पहले बातचीत करके उनकी स्वीकृति लेकर समय का निश्यय कर लेना चाहिए।

(9) भ्रमण स्थल पर बरती जाने वाली सावधानियों एवं अनुशासन सम्बन्धी बातों के बारे में

छात्रों को पहले ही सचेत कर दिया जाये।

(10) जिस पर्यटन स्थल पर जाना है, वहाँ जाने की अनुमति विद्यालय प्रधान या उच्च अधिकारी से लेनी चाहिए। (

11) क्षमण के अन्त में भ्रमण का उचित ढंग से मूल्यांकन किया जाये।

किसी नई क्रिया या नये पाठ को सीखने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। ये विधियाँ निम्न प्रकार हैं

1. करके सीखना (Learning by Doing)-डॉ. मेस (Dr. Mace) का कथन है-"स्मृति का स्थान मस्तिष्क में नहीं, वरना शरीर के अवयवों में है। यही कारण है कि हम करके सीखते हैं। "The seat of the memory is not in the mind, but in the muscular system We learn by doing."

-Quoted by Pryns Hopkins : Aids to successfull Teaching, p. 154

बालक जिस कार्य को स्वयं करते हैं, उसे वे जल्दी सीखते हैं। कारण यह है कि उसे करने में वे उसके उद्देश्य का निर्माण करते हैं, उसको करने की योजना बनाते हैं और योजना को पूर्ण करते हैं, फिर ये यह देखते हैं कि उनके प्रयास सफल हुए हैं या न ही। यदि नहीं, तो वे अपनी गलतियों को मालूम करके उनमें सुधार करने का प्रयत्न करते हैं। 2. निरीक्षण करके सीखना (Learning by Observation)- योकम एवं सिम्पसन (Yoakam and Simpson, p. 58) ने लिखा है-"निरीक्षण-सूचना प्राप्त करने, आधार सामग्री (Data) एकत्र करने और वस्तुओं तथा घटनाओं के बारे में सही विचार प्राप्त करने का साधन है।" बालक जिस वस्तु का निरीक्षण करते हैं, उसके बारे में वे जल्दी और स्थायी रूप से सीखते हैं। इसका कारण यह है कि निरीक्षण करते समय वे उस वस्तु को छूते हैं, या प्रयोग करते हैं, या उसके बारे में बातचीत करते हैं। इस प्रकार वे अपनी एक से अधिक इन्द्रियों का प्रयोग करते हैं। फलस्वरूप, उसके स्मृति पटल पर उस वस्तु का स्पष्ट चित्र अंकित हो जाता है।

3. परीक्षण करके सीखना (Learning by Experimenting)-नई बातों की खोज करना, एक प्रकार का सीखना है। बालक इस खोज को परीक्षण द्वारा कर सकता है परीक्षण के बाद वह किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है। इस प्रकार वह जिन बातों को सीखता है, वे उसके ज्ञान का अभिन्न अंग हो जाती है, उदाहरणार्थ, वह इस बात का परीक्षण कर सकता है कि गर्मी को ठोस और तरल पदार्थों पर क्या प्रभाव पड़ता है। वह इस बात को पुस्तक में पढ़कर भी सीख सकता है। पर यह सीखना उतना महत्वपूर्ण नहीं होता है, जितना कि स्वयं परीक्षण करके सीखना।

4. सामूहिक विधियों द्वारा सीखना (Learning by Group Methods)-सीखने का कार्य व्यक्तिगत Individual) और सामूहिक विधियों द्वारा होता है। इन दोनों में सामूहिक विधियों को अधिक उपयोगी और प्रभावशाली माना जाता है। इनके सम्बन्ध में कोलसनिक (Kolesnik, p. 376) की धारणा इस प्रकार है-"बालक को प्रेरणा प्रदान करने, उसे शैक्षिक लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता देने, उसके मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाने, उसके सामाजिक समायोजन को अनुप्राणित करने, उसके व्यवहार में सुधार करने और उसमें आत्मनिर्भरता तथा सहयोग की भावनाओं का विकस करने के लिए व्यक्तिगत विधियों की तुलना में सामूहिक विधियाँ कहीं अधिक प्रभावशाली हैं " मुख्य सामूहिक विधियाँ निम्नांकित हैं :-

(i) वाद-विवाद विधि (Discussion Method)-इस विधि में प्रत्येक छात्र को अपने विचार व्यक्त करने और प्रश्न पूछने का अवसर दिया जाता है। (ii) वर्कशॉप विधि (Workshop Method)-इस विधि में विभिन्न विषयों पर सभाओं का आयोजन किय जाता है और इन विषयों के हर पहलू का छात्रों द्वारा अध्ययन किया जाता है।

(iii) सम्मेलन व विचार-गोष्ठी विधियाँ Conference and Basic Methods)-इन विधियों में से विशेष विषय पर छात्रों द्वारा विचार-विनिमय किया जाता है।

(iv) प्रोजेक्ट, डाल्टन व बेसिक विधियाँ (Project, Dalton and Basic Methods)-इन आधुनिक विधियों में व्यक्तिगत और सामूहिक-दोनों प्रकार के प्रेरकों का स्थान होता है। प्रत्येक छात्र अपनी व्यक्तिगत रुचि, ज्ञान और क्षमता के अनुसार स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है, जिससे उसका सीखने का कार्य सरल हो जाता है। इसके अतिरिक्त, सामूहिक रूप से कार्य करने के कारण उसमेंस्पर्द्धा, सहयोग और सहानुभूति का विकास होता है।

5. मिश्रित विधि द्वारा सीखना (Learning by Mixed Method) सीखने की दो महत्वपूर्ण विधियाँ हैं-पूर्ण विधि (Whole Method) और आंशिक विधि (Part Method | पहली विधि में छात्रों को पहले पाठ्य-विषय का पूर्ण ज्ञान दिया जाता है और फिर उसके विभिन्न अंगों में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। दूसरी विधि में पाठ्य-विषय को खण्डों में बाँट दिया जाता है।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार इन दोनों विधियों को मिलाकर सीखने के लिए मिश्रित विधि का प्रयोग किया जाता है।

6. सीखने की स्थिति का संगठन (Organization of Learning Process) सीखने के कार्य को सरल और सफल बनाने के लिए सबसे अधिक आवश्यक है सीखने की स्थिति का संगठन। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब विद्यालय का निर्माण इस प्रकार किया जाय कि उसमें सीखने की सभी क्रिया उपलब्ध हों और सीखने की सभी विधियों का प्रयोग किया जाए। सीखने की ये सभी विधियाँ व्यक्तिके मनोविज्ञान पर आधारित हैं। इन विधियों के प्रयोग से अधिगम तथा शिक्षण, दोनों ही प्रभावशाली हो जाते हैं ।

हिन्दी के विविध रूप

परिभाषा, प्रकृति और संरचना की स्तरों की दृष्टि से भाषा मात्र को एक ही विषय के रूप में ग्रहण किया गया है, परन्तु यह भाषा मात्र का सामान्य विवेचन है। रचना, प्रयोग तथा निजी विशिष्टता आदि के कारण भाषा के अनेक रूप सम्भव हैं और रचना की दृष्टि से भाषा के दो प्रमुख रूप हैं-

(1) श्लिष्ट, (2) अश्लिष्ट।

जिस भाषा में शब्द के भीतर ही सम्बन्ध तत्व समाहित होता है वह श्लिष्ट कहलाती है,

जैसे-संस्कृत। जिसमें सम्बन्ध तत्व अलग-अलग होते हैं वह अश्लिष्ट मानी जाती है, जैसे-हिन्दी। प्रयोग की दृष्टि से सामान्य भाषा, साहित्यिक भाषा, राष्ट्र भाषा, राजभाषा, सम्पर्क भाषा, कूट भाषा आदि अनेक भाषा रूप सम्भव हैं। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित भाषाओं के उद्भव और विकास की दृष्टि से उन्हें विभिन्न भाषा परिवारों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। जैसे- भारोपीय परिवार की भाषाएँ, चीनी परिवार की भाषा, द्रविड़ परिवार की भाषाएँ, आग्नेय परिवार की भाषाएँ इत्यादि । इनके पुनः देश, प्रदेश, क्षेत्र आदि के आधार पर अनेक रूप हैं जैसे जर्मन, रूसी, फ्रांसीसी, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, हिन्दी आदि। केवल भारत में ही बाईस भाषाएँ तो संविधान द्वारा स्वीकृत हैं जिनमें हिन्दी, पंजाबी, उर्दू, असमिया, बंगला, उड़िया, तमिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़, गुजराती, मराठी आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्तभी यहाँ अनेक भाषाएँ प्रयुक्त होती हैं।

भाषा के विविध रूप

ऊपर हमने जिस भाषा की परिभाषा पर विचार किया है वह सामान्य भाषा थी। इसके अन्तर्गत बहुत सारे रूप आते हैं; जैसे-

(1) इतिहास, (2) भूगोल, (3) प्रयोग, (4) निर्माता।

भाषा के उपरोक्त आधारों पर ही भाषा के विविध रूप बनते हैं। अब हम भाषा के विविध रूपों की व्याख्याकरेंगे।

(2) व्यक्ति बोली-एक व्यक्ति की भाषा को व्यक्ति बोली कहते हैं। यह बोली हमेशा एक जैसी नहीं रहती है अर्थात् किसी एक व्यक्ति की किसी एक समय की भाषा ही व्यक्ति बोली कहलाएगी।

(3) उपबोली-इसे स्थानीय बोली (Local Dialect) भी कहते हैं। इसका प्रयोग एक छोटे से क्षेत्र में होता है। सही रूप में यह बोली, बहुत सी व्यक्ति बोलियों का सामूहिक रूप है। अतः कह सकते हैं कि किसी छोटे क्षेत्र की व्यक्ति बोलियों का वह रूप जिसमें आपस में कोई खास भेद न हो, उसे स्थानीय बोली कहते हैं।

(4) बोली-दैनिक जीवन में बोल-चाल में आने वाले भाषा के स्थानीय रूप को बोली कहते हैं। बोली ध्वनि, रूप वाक्य, रचना, अर्थ शब्द-समूह तथा मुहावरे की दृष्टि से अन्य क्षेत्रीय रूपों से भिन्न होती है। किन्तु भिन्नता इतनी नहीं होती कि अन्य बोली बोलने वाले उसे समझ न सकें। बोली की यह खास विशेषता है कि अपने क्षेत्र में बोलने वालों के उच्चारण, रूप रचना, वाक्य गठन कोई खास भिन्नता नहीं होती। उदाहरण के लिए गुजरात की भाषा गुजराती है जबकि कच्छी, डाँगी, आदिवासी की बोली, बोलियों के अन्तर्गत आती हैं।

हिन्दी भाषा की बोलियाँ जैसे अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि ने स्थानीय रूप धारण कर लिए हैं।

(5) जिस तरह बहुत सी मिलती-जुलती बोलियों का सामूहिक रूप बोली कहलाती है, इसी तरह बहुत सी मिलती-जुलती बोलियों का सामूहिक रूप भाषा कहलाती है। भाषा का क्षेत्र बहुत ही विशाल होता है। भाषा में साहित्यिक प्रवृत्तियाँ होती हैं। उसका अपना बना-बनाया नियमबद्ध व्याकरण होता है। भाषा का क्षेत्र व्यापक तथा साहित्य बढ़ा-चढ़ा होता है। अतः भाषा बोलियों में मुख्य स्थान ग्रहण कर लेती है। कभी-कभी यह भी होता है कि बोली-भाषा का स्थान ग्रहण कर ले।

स्थानीय, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक आंदोलनों की प्रबलता को लेकर बोली भाषा बन बैठती है। राजकीय कार्यों से ही मेरठ की खड़ी बोली-उत्तर भारत की हिन्दी भाषा की प्रकृति बन गई ऐसी भाषा के तत्कालीन रूप को लेकर उसके उच्चारण और व्याकरण निश्चित किए जाते हैं।

(7) अपभाषा (Slang)-'अपभाषा' भाषा का वह रूप है जिसे रिक्त भाषा की तुलना में विकृत या अपभ्रष्ट माना जाता है। भाषा के आदर्श रूप का इसमें सर्वथा अभाव रहता है। जैसे हिन्दी में करा' किया मरे को गबा' गया आदि इसी कोटि में आते हैं।

(9) विश्व भाषा-जिस तरह अनेक बोलियों में से कोई एक बोली विशाल और व्यापक भाषा का रूप धारण कर लेती है और भाषा राष्ट्रभाषा बन जाती है इसी तरह व्यापारिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक, आर्थिक और सामाजिक कारणों से राष्ट्र भाषा विश्व भाषा या अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन जाती है। आज अंग्रेजी को विश्व भाषा होने की गर्मी प्राप्त है ।

(10) विदेशी भाषा (Foreign Language)-साधारणतया जो भाषा किसी खास देश की न होकर दूसरे देश की होती है उसे विदेशी भाषा कहते हैं। वह उस देश की संस्कृति, भाषा तथा मातृभाषा नहीं होती। भारत के लिए चीनी, जापानी, फ्रेंच आदि भाषाएँ विदेशी भाषाएँ हैं।

(11) विशिष्ट भाषा-विभिन्न तरह के व्यवसाय तथा उद्योग-धंधे में लगे लोग जिस भाषा तथा शब्द समूहों का बार-बार प्रयोग करते हैं उसे विशिष्ट भाषा कहते हैं। व्यापारियों, मजदूरों, छात्रालय तथा दलितों आदि भाषाएँ इसी श्रेणी में आती हैं।

उपर्युक्त स्वरूपों के सिवाय कृत्रिम तथा गुप्त भाषा भी इसी श्रेणी में आती है। ऊपर मूल भाषा, व्यक्ति बोली, उपभाषा, उपबोली, बोली, आदि भाषाओं पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। भाषा के कुछ अन्य रूप भी हैं जो इस प्रकार हैं

(1) साहित्यिक भाषा (2) जीवित भाषा (3) मृत भाषा (4)राजभाषा (5) जाति भाषा

(6) स्त्री भाषा(7) पुरुष भाषा(8) मिश्रित भाषा (9) सहायक भाषा

(11) परिपूरक भाषा (13) समतुल्य भाषा

(10) संस्कृत भाषा (12) सम्पर्क भाषा

भाषा के विभिन्न रूप

(Different Forms of Language)

(क) प्रयोग की दृष्टि से भाषा के रूप (Forms of Language from the point of view of use)-भाषा ऐसा ध्वनि-समूह है जिसके उच्चारण या लिखित रूप के द्वारा अपने विचारों एवं भावों को प्रकट करता है। भाषा की इस सामान्य परिभाषा से स्पष्ट होता है कि मनुष्य भाषा का प्रयोग दो रूपों में करता है:-

(i) उच्चरित रूप और (ii) लिखित रूप।

(i) उच्चरित रूप (Pronounced form)-भाषा का आदि रूप उच्चरित है। भाषा का आविष्कार उच्चारण से ही हुआ था। जबान, होठ, तालू, कण्ठ तथा अन्य स्वरतन्त्रियों के सहयोग से विभिन्न ध्वनियों का प्रयोग करके मनुष्य अपने विचारों को प्रकट करता है। यही उच्चारण है जब हम एक-दूसरे से बातचीत करते हैं, गीत गाते हैं, एक-दूसरे के प्रति बोलकर अपने उद्गार प्रकट करते हैं, तब वस्तुतः हम उच्चरित भाषा का ही प्रयोग कर रहे होते हैं।

(ii) लिखित या लिपि का रूप (Written form)-जब मनुष्य लिखकर अपने विचारों एवं भावों को प्रकट करता है तब वह भाषा के लिखित बद्ध रूप का प्रयोग करता है। भाषा पहले उच्चरित रूप में प्रकट हुई और फिर लिखित रूप में विकसित हुई। उच्चरित भाषा अस्थायी होती है परन्तु लिखित भाषा अपेक्षाकृत स्थायी होती है। दूर-दूर बैठे लोगों तक अपने विचार पहुँचाने के लिए मनुष्य भाषा के लिखित रूप का प्रयोग करता है। लिखित भाषा के माध्यम से ही एक पीढ़ी का ज्ञान दूसरी पीढ़ी तक पहुँचता है। लिखित भाषा मनुष्य के ज्ञान का अक्षय भण्डार है। मनुष्य जब कोई पत्र लिखता है, किसी को लिख कर कोई सन्देश भेजता है, लिखकर अपने भाव और विचार प्रकट करता है, कोई पुस्तक लिखता है तब वस्तुतः वह भाषा के लिखित रूप का ही प्रयोग कर रहा होता है।

(ख) व्यवहार की दृष्टि से भाषा के रूप (Form of Language from the point of view of use)-मनुष्य के व्यवहार के अलग-अलग रूप होते हैं और उसी के अनुसार भाषा के रूपों में भी विविधता आ जाती है। व्यवहार की दृष्टि से भाषा के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं :-

1. मातृ भाषा-बच्चा अपनी माँ से जिस भाषा को ग्रहण करता है वह उसकी 'मातृभाषा' कहलाती है, क्योंकि माँ का सम्बन्ध किसी वर्ग या समुदाय से होता है। इसलिए उस समुदाय में बोली जाने वाली भाषा और समुदाय के सभी लोगों की मातृभाषा हो भी। वस्तुतः मनुष्य के अपने क्षेत्र की भाषा, जिस क्षेत्र में उसका जन्म और पालन-पोषण हुआ हो उसकी 'मातृभाषा' है। मातृभाषा मनुष्य की सहज अभिव्यक्ति का साधन है। इस भाषा में मनुष्य जितनी आसानी के साथ अपनी बात कह सकता है वह अन्य भाषा में नहीं कह सकता है। मातृभाषा सहज अभिव्यक्ति का ही नहीं सहज-बोध का भी साधन है अर्थात् मातृभाषा में कही गई बात मनुष्य को बहुत जल्दी समझ आती है। यही कारण है कि विख्यात शिक्षाशास्त्रियों के माध्यम से बच्चे को शिक्षा 'बोली' में सम्बन्धित क्षेत्र के लोगों का लगभग एक जैसा उच्चारण तथा शब्द-समूह होता है। 'ब्रज', 'भोजपुरी' आदि हिन्दी की बोलियाँ हैं। 'मुलतानी', 'डोगरी' आदि पंजाबी की बोलियाँ हैं । कोई भी बोली परिष्कृत, लोकप्रिय और विस्तृत होकर भाषा का रूप भी धारण कर सकती है। संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि बोली भाषा का वह रूप है जिसका किसी सीमित क्षेत्र में प्रयोग किया जाता है।

2. प्रादेशिक भाषा-किसी प्रदेश-विशेष में सामान्यतया बोली जाने वाली भाषा को प्रादेशिक भाषा कहते हैं। प्रादेशिक भाषा के क्षेत्र में कई बोलियाँ भी प्रयुक्त होती रहती हैं और प्रादेशिक भाषा को प्रभावित भी करती रहती हैं, जैसे-उत्तर प्रदेश, मध्य-प्रदेश, बिहार आदि प्रदेशों की प्रादेशिक भाषा हिन्दी है परन्तु इन प्रदेशों के कई क्षेत्रों में 'ब्रज', 'अवधी', 'भोजपुरी' आदि कई बोलियों का भी प्रयोग होता है। प्रादेशिक भाषा अपने प्रदेश के खास लोगों की प्रायः मातृभाषा होती है, परन्तु यह शाश्वत नियम नहीं है। कई प्रदेशों में ऐसे लोग भी बस जाते हैं जिनकी मातृभाषा प्रादेशिक भाषा से अलग होती है। उदाहरणस्वरूप यदि कोई बंगाली पंजाब में आकर बस जाये तो उनकी मातृभाषा पंजाबी नहीं बल्कि बंगाली होगी। यद्यपि पंजाब की प्रादेशिक भाषा 'पंजाबी' है। इस प्रकार आन्ध्र-प्रदेश की प्रादेशिक भाषा तेलगु है, परन्तु वहाँ पर रहने वाले कई लोगों की मातृभाषा 'उर्दू' है। अतः स्मरण रहे कि-

(i) प्रादेशिक भाषा के साथ-साथ कई बोलियों का भी अस्तित्व बना रहता है। (ii) प्रादेशिक भाषा अपने प्रदेश के खास लोगों की मातृभाषा भी होती है परन्तु उस प्रदेश में ऐसे लोग भी बस सकते हैं जिनकी मातृभाषा अलग हो।

3.राष्ट्रभाषा-एक राष्ट्र में कई प्रकार की प्रादेशिक भाषाओं और बोलियों का प्रयोग किया जाता है, परंतु समूचे राष्ट्र को भावात्मक एकता के सूत्र में बाँधने और राज्य के प्रशासनिक कार्य को उचित रूप से चलाने के लिए राष्ट्र की एक भाषा का होना अनिवार्य है। इसे राष्ट्रभाषा कहते हैं। सभी प्रदेश अपने-अपने क्षेत्रों में अपनी प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग अवश्य करते हैं। परन्तु समूचे राष्ट्र के सार्वजनिक कामों तथा प्रशासनिक कार्यों में राष्ट्रभाषा का प्रयोग किया जाता है और किया जाना चाहिए। भारतीय संविधान ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा होने का गौरव प्रदान किया है क्योंकि यह भारत की अधिकतम जनता द्वारा भली-भाँति समझी और बोली जाती है। हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार आदि प्रदेशों की तो यह प्रादेशिक भाषा है। अन्य राज्यों में भी इसका व्यवहार किया जाता है। अतः हिन्दी राष्ट्रभाषा होने में पूर्ण रूप से समर्थ है।

4. अन्तर्राष्ट्रीय भाषा-जिस भाषा में विभिन्न देशों एवं राष्ट्रों में परस्पर कार्य व्यापार चलता है उसे अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कहते हैं। आज जबकि वैज्ञानिक उन्नति के कारण सभी देश एक दूसरे के निकट आ रहे हैं और उनमें परस्पर राजनीतिक, आर्थिक, व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का होना अनिवार्य है। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अपने देश-विदेश की राष्ट्रभाषा तो होती है, इसके साथ-साथ वह अन्य अधिकांश राष्ट्रों में भी पर्याप्त रूप से प्रयुक्त की जाती है। आजकल अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का गौरव 'अंग्रेजी' को प्राप्त है।

5.संस्कृत भाषा-किसी जाति की संस्कृति, कला, ज्ञान, आचार-विचार आदि को प्रकट करने वाली प्राचीन भाषा को संस्कृत भाषा में उस जाति का समूचा ज्ञान-भण्डार तथा उसकी परम्परायें सुरक्षित रहती हैं। अपनी संस्कृति तथा प्राचीन गौरवपूर्ण मान्यताओं का परिचय प्राप्त प्राप्त करने के लिए सांस्कृतिक भाषा की शिक्षा दी जाती है। यूरोप की सांस्कृतिक भाषाएँ ग्रीक और लैटिन हैं। भारत की सांस्कृतिक भाषा संस्कृति' है। यद्यपि संस्कृत भाषा का व्यावहारिक प्रयोग नहीं होता परन्तु भारत के प्राचीन ज्ञान तथा गौरवपूर्ण सांस्कृतिक परम्पराओं का परिचय प्राप्त करने के लिए संस्कृत भाषा का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

6.स्वीकृत या आदर्श भाषा-भाषा का रूप तो हर दस कोस के बाद बदल जाता है परिणामस्वरूप एक भाषा क्षेत्र में कई बोलियों का प्रयोग होता रहता है। इन बोलियों में जो बोली व्याकरण, रचना, काव्य आदि के आधार पर लोकप्रियता प्राप्त कर लेती है, वह स्वीकृत भाषा या आदर्श भाषा के रूप में ग्रहण कर ली जाती है, और राजकीय कामों, शिक्षालयों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं में इसी भाषा का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणस्वरूप हिन्दी भाषा की कई बोलियाँ हैं। परन्तु 'खड़ी बोली' ही उसके आदर्श रूप में स्वीकृत है। यही कारण है कि 'खड़ी बोली' को ही आदर्श मानकर हिन्दी का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी-शिक्षण में यह बोली ही आदर्श मानी जाती है, शेष सभी बोलियों को गौण स्थान प्राप्त होता है।

7.मूल भाषा-प्राचीन भाषा को मूल भाषा कहते हैं। इन्ही मूल-भाषाओं ने भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कई शाखाओं में बँटकर विभिन्न भाषा वर्गों को जन्म दिया है। आधुनिक भाषाओं का जन्म इन्हीं मूल-भाषाओं से ही हुआ है। उत्तर भारत की जितनी आर्य भाषायें हैं उनकी मूल-भाषा प्राचीन संस्कृत है। इसी प्रकार यूरोपीय भाषाओं की मूल-भाषा ग्रीक और लैटिन है। निष्कर्ष-इस प्रकार हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं हिन्दी भाषा का विकास संक्षेप में स्पष्ट किया गया है। हिन्दी भाषा का वर्तमान में उत्तरोत्तर विकास हो रहा है तथा इसकी कुछ बोलियों में पर्याप्त साहित्य रचा जा रहा है।

मानक हिन्दी की भूमिका

जब किसी बोली या बोलियों के समूह को शिक्षित वर्ग की प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है, तब उसे मानक भाषा कहा जाता है। इसका प्रयोग शिक्षा-दीक्षा के माध्यम के रूप में होता है, तथा राजकीय कार्य और साहित्यिक रचनाएँ इसी के माध्यम से होती हैं। ऐसी भाषा का निश्चित व्याकरण होता है।

मानक भाषा का अर्थ

मानक भाषा किसी भाषा की उस विभाषा को कहा जाता है, जिसे साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अन्य भाषाओं की तुलना में वरेण्यता प्राप्त हो जाती है, तथा जिसे अन्य विभाषा-भाषी सामाजिक दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त भाषा स्वीकार कर लेते हैं।

मानक भाषा की परिभाषा

आचार्य श्यामसुन्दर दास ने मानक भाषा को टकसाली भाषा कहा है। आचार्य श्यामसुन्दर दास के अनुसार- कई विभाषाओं में व्यवहृत होने वाली एक शिष्ट-परिगृहित विभाषा ही मानक भाषा अथवा टकसाली भाषा कहलाती है।"

कैलाशचन्द्र भाटिया के अनुसार-"मानक शब्द बहुत पुराना नहीं है। हिन्दी भाषा के विकास में मानक शब्द के पर्याय के रूप में उच्च खड़ी बोली, ठेठ हिन्दी, परिनिष्ठित और शुद्ध हिन्दी जैसे शब्द भारत में प्रचलित रहे हैं। इन पुराने शब्दों को वर्तमान मानक शब्द के पूर्वज या पूर्व एक ही कहा जा सकता है।"

आचार्य रामचन्द्र वर्मा के अनुसार-"मानक शब्द का अर्थ है-वह निश्चित या स्थिर किया हुआ सर्वमान्य मान या माप, जिसके अनुसार किसी की योग्यता, श्रेष्टता, गुण आदि का अनुमान याकल्पना की जाए।"

डॉ. रामप्रकाश सक्सेना के अनुसार-"जहाँ-जहाँ एक शब्द के एक से अधिक रूप प्रचलित हों, वहाँ आवृत्ति के आधार पर किसी एक को मानक कहा जा सकता है।" पाल एल गार्विन ने सन् 1956 में प्रकाशित अपने एक ग्रन्थ में लिखा था-'मानक भाषा' भाषा का वह सुव्यस्थित रूप है जो वृहद भाषा समुदाय द्वारा स्वीकृत हो तथा जो इसके लिए प्रतिमान का कार्य करे।" हरदेव बाहरी के अनुसार- मानक या आदर्श का जो चयन होता है, उसे समाज द्वारा विशेषतः शिक्षित समाज द्वारा स्वीकृत होना चाहिए-बोलचाल में और लिखित में भी। लिखित रूप अधिक महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इसमें समानता और एकरूपता का निर्वाह भली-भाँति हो सकता है।"

डॉ. दिलीप सिंह के अनुसार-"भाषा की मान्यता का अर्थ है, वह सापेक्ष स्थिति जो समान स्थितियों में 'मान' अथवा 'आदर्श' के रूप में समाज द्वारा स्वीकृत की जाती है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार-किसी भाषा के मानक रूप का अर्थ है उस भाषा का वह रूप जो उच्चारण, रूप-रचना, वाक्य-रचना, शब्द और शब्द-रचना, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, प्रयोग तथा लेखन आदि की दृष्टि से, उस भाषा के सभी नहीं तो अधिकांश सुशिचित लोगों द्वारा शुद्ध मानाजाता है।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जब कोई विभाषा परिष्कृत होकर शिष्टजनों का सामाजिक अनुमोदन प्राप्त करके महत्वपूर्ण हो जाती है, तब उसे मानक भाषा कहा जाता है। हिन्दी की खड़ी बोली को हिन्दी की मानक भाषा का दर्जा प्रदान किया गया है। मानक भाषा का दर्जा प्राप्त करने के पश्चात् बोली पार्श्ववर्ती विभाषाओं एवं बोलियों को भी प्रभावित करने में सक्षम हो जाती है। प्रत्येक परिनिष्ठित भाषा के मौखिक और लिखित रूप पाए जाते हैं। मौखिक रूप पर प्रदेश विदेश की छाप रहती है जबकि लिखित रूप प्रादेशिक प्रभाव से मुक्त रहता है।

मानक भाषा की विशेषताएँ

1.स्व-लिपि एवं व्याकरण-मानक भाषा की अपनी लिपि तथा व्याकरण होती है, मानक भाषा में व्याकरण के सभी नियमों का पालन किया जाता है।

2.सर्वमान्यता-मानक भाषा अपने भाषा-क्षेत्र में सर्वमान्य होती है। इस प्रकार की भाषा अपने भाषा क्षेत्र में सभी के द्वारा आदर्श रूप में स्वीकृत होती है। एक ध्वनि को प्रकट करने के लिए प्रचलित विधि लिपि-प्रतीकों में से एक को मान्यता दी जाती है और सर्वत्र समान रूप से उस एक मान्य रूप के प्रयोग पर जोर दिया जाता है।

3.एकरूपता-मानक भाषा में उच्चारण, लेखन में प्रयुक्त अक्षर, वर्तनी, शब्द रूप तथा वाक्य रचना आदि की दृष्टि से एकरूपता होती है। इसके अन्तर्गत ध्वनियों के विषम उच्चकरणों के स्थान पर एकरूप उच्चारण का निर्धारण कर उन्हें मानक माना जाता है।

4. स्थिरता-मानक भाषा में स्थिरता का बोध होता है। यह निश्चित तथा निर्धारित होती है। मानकीकरण से स्थिर भाषा नए ज्ञान-विज्ञान और जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तत्पर होती है।

5. अशुद्धिरहित-मानक भाषा में लेखन, उच्चारण, व्याकरण तथा वाचन इत्यादि की अशुद्धियाँ नहीं होती हैं। मानक भाषा को व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध और परिष्कृत माना जाता है।

6. साहित्य सृजन-अधिकांश साहित्य सृजन, पत्र-पत्रिकाओं में लेखन, अनुवाद, समाचार प्रकाशन, आकाशवाणी, दूरदर्शन इत्यादि में कार्यक्रम मानक भाषा में होता है।

7.अधिकृत भाषा-मानक भाषा विशेष क्षेत्र में राज्य द्वारा अधिकृत भाषा होती है। इस भाषा को राज्य के द्वारा विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। राजकीय अभिलेखों का लेखन, राजकीय पत्रों का प्रकाशन भी इसी भाषा में होता है।

8.मानक शब्दावली-मानक भाषा की अपनी मानक शब्दावली होती है। भारत में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग का गठन किया गया है जो कि विभिन्न विषयों से सम्बन्धित मानक शब्दावली का निर्माण करती है।

9.परस्पर बोधगम्यता-मानक भाषा उस विशेष क्षेत्र में परस्पर बोधगम्य होती है। उस क्षेत्र के सभी जन उस भाषा को सरलता से बोल और समझ सकते हैं। विचारों के आदान-प्रदान में इस भाषा का प्रयोग किया जाता है।

10. शिक्षा का माध्यम-मानक भाषा का स्वरूप शिक्षा प्रदान करने में अत्यन्त ही सहायक होता है। शिक्षा के माध्यम के रूप में लगभग इसी भाषा का प्रयोग किया जाता है।

11. क्षेत्र निरपेक्षता-मानक भाषा का विकास क्षेत्र-विशेष में प्रचलित बोली के आधार पर होता है, किन्तु विकसित होने के बाद वह भाषा उस विशेष क्षेत्र में बँधी न रहकर अन्य क्षेत्रों में उसी मूल रूप में बोली जाने लगी है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी मानक भाषा, हिन्दी भाषा का वह रूप है जो उच्चारण, रूप-रचना, वाक्य-रचना, शब्द और शब्द-रचना, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्तियों, प्रयोग तथा लेखन आदि की दृष्टि से इस भाषा के सभी नहीं तो अधिकांश सुशिक्षित लोगों के द्वारा शुद्ध माना जाता है। मानकता अनेकता में एकता तथा अशुद्धता में शुद्धता की खोज है।

मानक हिन्दी एवं बोली में अन्तर

भाषा-वैज्ञानिक के लिए मानक हिन्दी (भाषा) और बोली में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं होता है। स्थूल रूप से बोली हम उसे कहते हैं, जो व्यापक भाषा-क्षेत्र के भीतर अलग-अलग स्थानों में कुछ विभेदक विशेषताओं के साथ बोलचाल के लिए दैनिक प्रयोग में आती है। ऐसी अनेक बोलियों को जब परिष्कृत एवं परिनिष्ठित रूप प्राप्त हो जाता है और वे उच्चस्तरीय चिन्तन और लेखन के अभिव्यक्ति-माध्यम के रूप में प्रयोग में आने लगती है, तब उन्हें योजक शक्ति के रूप में मानक भाषा की मान्यता मिल जाती है। मानक भाषा तथा बोलियाँ दोनों ही अध्ययनकर्ताओं को प्रायः एक ही प्रकार की अध्ययन सामग्री प्रदान करती है, इसलिए कई भाषाविदों ने कहा है कि

1. भाषाविद् के लिए बोली और मानक भाषा में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है।

2. मानक भाषाओं और बोलियों में विभाजक रेखाएँ खींचना असम्भव है। अपने-अपने सीमान्तों पर ये एक-दूसरे में अदृश्य रूप में घुली-मिली रहती हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मानक भाषा तथा बोली में कोई तात्विक अन्तर नहीं पाया जाता है। भाषा अपने मूल रूप में बोली ही होती है। किसी विशेष कारण से जब वह बोली प्रमुखता प्राप्त कर लेती है, तब वही भाषा बन जाती है । फिर भी मानक भाषा तथा बोली में कुछ अन्तर देखने को जरूर मिलता है जिसके आधार पर दोनों में अन्तर किया जा सकता है

1. मानक भाषा का क्षेत्र व्यापक होता है जबकि बोली का क्षेत्र तुलनात्मक रूप से छोटा होता है।

2. मानक भाषा के अन्तर्गत अनेक बोलियाँ होती हैं जबकि बोली की अपनी विशिष्टता होती है।

3. मानक भाषा में बोली की तुलना में शब्द भण्डार अधिक होता है।

4.दो मानक भाषाओं में बोधगम्यता सम्भव नहीं है जबकि दो बोलियों में बोधगम्यता तथा समानता सम्भव है।

5. मानक भाषा का साहित्य बोली की तुलना में अधिक समृद्ध और विकसित होता है।

6. मानक भाषा का अपना एक मानक स्वरूप होता है जबकि बोली का कोई मानक स्वरूप नहीं होता है।

7.सभी राजनैतिक एवं प्रशासनिक कार्य अधिकांशतः मानक भाषा के माध्यम से किया जाता है जबकि बोली का प्रयोग अधिकांशतः बोलचाल हेतु किया जाता है।

इस प्रकार ये प्रमुख अन्तर मानक भाषा एवं बोली में देखने को मिलते हैं।

संविधान में हिन्दी का स्थान

भारत में स्वतन्त्रता के बाद से ही भाषा की लड़ाई प्रारम्भ हो चुकी थी। हिन्दी-भाषी राज्यों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने पर बल दिया जबकि दक्षिण के राज्यों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने का पुरजोर विरोध किया। यह विरोध आज भी जारी है, जिससे हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्रदान नहीं किया जा सका है। यद्यपि हिन्दी का प्रयोग क्षेत्र दिन-प्रतिदिन व्यापक हो रहा है जिससे हिन्दी को अनौपचारिक रूप से राष्ट्रभाषा तथा संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। भारत में मातृभाषा, राष्ट्रभाषा तथा संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। हिन्दी भाषा के महत्व को स्वीकारते हुए हरीश शर्मा कहते हैं कि-"राजभाषा एक अन्तप्रदिशिक मध्यवर्तिनी भाषा होती है, जो विभिन्न भाषी प्रदेशों के बीच सम्पर्क-स्थापन में समर्थ होती है। व्यापक स्तर पर राष्ट्र के भीतर एकता की अनुभूति कराने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। हिन्दी को संविधान में यही पद प्राप्त है। भारतवर्ष एक बहुभाषी देश है, लेकिन उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक की शासन व्यवस्था के लिए केन्द्र द्वारा स्वीकृत राजभाषा अथवा सम्पर्क भाषा हिन्दी ही है। इस दृष्टि से हिन्दी को सहज ही राष्ट्रभाषा और राजभाषा दोनों का दर्जा प्राप्त है।" अर्थात् भारत में हिन्दी को महत्वपूर्ण स्थान सहज ही प्राप्त हो चुका है।

मातृभाषा शाब्दिक अर्थ-मातृभाषा अर्थात् माता की भाषा, वह भाषा जिसे किसी सन्तान की माँ बोलती है अथवा मातृ भाषा वह भाषा है, जिसे सन्तान अपनी माँ से सीखती है। भाषा विज्ञान अथवा भाषा शिक्षण शास्त्र में मातृभाषा उस भाषा को कहते हैं, जिसे बालक अपनी माँ के मुख से सुनता है और अनुकरण विधि से सीखकर बोलता है जिसमें वह अपने भावों को सर्वप्रथम भाषा के रूप में अभिव्यक्त करता है। मातृ-भाषा एक उपकरण, आनंद, प्रसन्नता, ज्ञान का एक स्त्रोत, रूचियों एवं अनुभूतियों का निर्देशक और विधाता द्वारा मनुष्य को दी हुई उस सर्वोत्तम शक्ति के प्रयोग का साधन है जिसके आधार पर हम उसके निकट पहुँच जाते हैं। सार रूप में किसी व्यक्ति की मातृभाषा से तात्पर्य उस भाषा से होता है। उससे अथवा उसकी किसी बोली का वह अपने शिशुकाल से ही अपने परिवार एवं समाज के बीच रहकर स्वाभाविक रूप से अनुकरण द्वारा सीखना है और प्रयोग करता है।

मातृभाषा रूप में हिन्दी

हिन्दी सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधने वाली भाषा रही है। भारत एक बहुभाषीय देश है। भारतीय जनगणना 1961 ईस्वी में मातृभाषा के रूप में बोली जाने वाली भाषाओं की संख्या 1652 बतायी गयी है। इस सर्वेक्षण में बोलियों की गणना भी की गई है। भारतीय जनगणना 1981 ईस्वी में मातृ भाषाओं का उल्लेख है। इस सर्वेक्षण में बोलियों की गणना अलग न करके उसे तत्सम्बन्धी भाषा के साथ रखकर गणना की गई है हिन्दी भी 107 मातृभाषाओं में एक है। इन सब मातृ भाषाओं की तुलना में हिन्दी का मातृभाषा की दृष्टि से क्षेत्र व्यापक है। इस महादेश की लगभग 43 प्रतिशत जनता मातृभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग करती है।

द कैम्ब्रिज इनसाइक्लोपीडिया ऑफ लैंग्वेज

ने विश्व की प्रथम बीस भाषाओं में मातृभाषा-भाषी वर्ग में हिन्दी को चौथा तथा जनसंख्या की दृष्टि से हिन्दी को तीसरा स्थान दिया गया है। आँकड़ों के अनुसार सन् 1961 में हिन्दी का भाषा भाषियों का प्रतिशत भारतवर्ष की जनसंख्या के सन्दर्भ में 30.37 प्रतिशत था जबकि 1971 में 26.67 प्रतिशत तथा 1981 में 42.88 प्रतिशत था। भारत की भाषाओं में हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जो कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा असम से कच्छ तक समझी और बोली जाती है। मातृभाषा के रूप में हिन्दी केवल भारत की सबसे बड़ी भाषा तथा विश्व की तीसरी बड़ी भाषा है।

राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषा राष्ट्र विशेष की प्रतिनिधि भाषा होती है। राष्ट्र की भाँति राष्ट्रभाषा का भी भावात्मक प्रयोग है। भावात्मक एकता और राष्ट्र गौरव के लिए इसका होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राष्ट्र की सभी प्रादेशिक इकाइयों के बीच सम्पर्क और संवाद का यह महत्वपूर्ण माध्यम होती है। यह स्वतन्त्र और स्वाधीन राष्ट्रों के लिए अपरिहार्य है। यह जनता की सहज विश्वासमयी भाषा होती है, जिसका प्रयोग वह राष्ट्र की व्यावहारिक सुविधा के लिए करती है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार-"राष्ट्रभाषा की कल्पना राजभाषा से भिन्न है। उसका पद और भी बड़ा है। उसी भाषा का गौरव सबसे अधिक हो सकता है और वही राष्ट्रभाषा कहला सकती है, जिसको समस्त जनता समझती हो और जिसका अस्तित्व सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हो।"

काका कालेलकर के अनुसार-"राष्ट्रभाषा को हम और भी कई नाम देंगे, उसको 'सबकी बोली कहेंगे, 'कौमी जबान' कहेंगे, 'हृदय की भाषा' कहेंगे, 'स्नेह भाषा' या ऐक्य भाषा' कहेंगे और सबसे बढ़कर 'स्वराज्य भाषा' कहेंगे। मेरे पेई के अनुसार-"कतिपय विद्वान राष्ट्रभाषा को सरकारी भाषा के रूप में स्वीकारते हैं। इसका प्रयोग सरकारी दस्तावेजों में होता है। सामान्यतया यह

साहित्यिक भाषा से मेल खाती है।"

डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार-"जो भाषा थोड़ी बहुत सारे राष्ट्र में बोली और समझी जाती है, वह अपने इसी गुण में राष्ट्रभाषा होती है।" हरीश शर्मा के अनुसार-"राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण राष्ट्र की भावात्मक एकता को अभिव्यक्त करने का माध्यम होती है। इसके द्वारा समूचे राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना प्रतिभासित होती है। यह सर्वाधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा होती है।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी

किसी राष्ट्र की वह भाषा जिसे सम्पूर्ण देश थोड़ा बहुत समझने की सामर्थ्य रखता हो राष्ट्रभाषा कहलाती है। दूसरे शब्दों में किसी भी देश में सबसे अधिक बोली तथा समझी जाने वाली समृद्ध भाषा ही वहाँ की राष्ट्रभाषा होती है। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। उसकी उन्नति हमारी उन्नति है। इसके प्रचार-प्रसार में सहायक होना हम सभी को पवित्र कर्तव्य है। इसके लिये हमें बहुत कुछ करना है।

स्वतन्त्रता पश्चात् सभी भारतीय नेताओं ने अनुभव किया कि सारे देश की भाषा यदि कोई भाषा हो सकती है तो वह हिन्दी ही है। हिन्दी को सम्पूर्ण देश के लिए सम्पर्क भाषा बनाना होगा, गुजरात के महात्मा गांधी, महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक, बंगाल के रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पंजाब के लाला लाजपत राय, दक्षिण के चक्रवर्ती राजगोपालाचारी आदि अनेक नेताओं ने एक स्वर में हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया। हिन्दी स्वतन्त्रता आन्दोलन में शंखनाद भाषा बनी, यह देश की जन-भाषा है। भारत की अधिकतर जनता गाँवों में निवास करती है और आंकड़ों के अनुसार हिन्दी मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्र की भाषा रही है। हिन्दी भाषा-भाषियों का 81.07 प्रतिशत गाँवों में निवास करता है। केवल 19.03 प्रतिशत हिन्दी भाषी लोग भारत के शहरों में रहते हैं। हिन्द भारत के विभिन्न प्रदेशों मध्यप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान, दिल्ली प्रान्तों की मुख्य भाषा है। इन प्रान्तों के अधिकतर लोगों की मातृभाषा भी हिन्दी होती है।

संविधान में राष्ट्रभाषा का कोई प्रावधान नहीं भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में यद्यपि आमतौर पर स्वीकार किया जाता है, तथापि अधिकारिक रूप में ऐसा कोई दर्जा प्राप्त नहीं है, वस्तुतः संविधान में राष्ट्रभाषा की घोषणा का कोई प्रावधान ही नहीं है। केन्द्रीय गृह राज्य मन्त्री अजय माकन ने राज्य सभा में 3 मार्च, 2010 को एक प्रश्न के उत्तर में यह स्वीकार किया कि संविधान के अनुच्छेद 343 में हिन्दी को संघ की राजभाषा स्वीकार किया गया है, उन्होंने सदन को राष्ट्रभाषा का कोई प्रावधान संविधान में न होने की बात को स्वीकार किया है। ज्ञातव्य है कि गुजरात उच्च न्यायालय ने भी एक मामले में सुनवाई के दौरान यह टिप्पणी 25 जनवरी, 2010 को की थी कि भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में आमतौर पर स्वीकार किया जाता है, किन्तु ऐसे किसी अध्यादेश से न्यायालय से अनभिज्ञता व्यक्त की, जिससे हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा औपचारिक रूप से प्रदान किया गया हो।

इन सबके बावजूद भी अघोषित रूप से हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया गया है। भारत में जितना महत्व आज हिन्दी का है, उतना किसी अन्य भाषा का नहीं है।

सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी की भूमिका

भाषा के सन्दर्भ में सम्पर्क भाषा का अर्थ होता है-"जोड़ने वाली भाषा"। यह ऐसी भाषा है जो अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाले लोगों को जोड़ती है, उनके बीच सम्पर्क स्थापित करने वाला माध्यम बनती है। जब दो अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाले व्यक्ति

आपस में बातचीत करना चाहते हैं तो उन्हें किसी ऐसी भाषा की जरूरत होती है जिसे वे दोनों समझ सकें। ऐसी भाषा उन दोनों में से किसी एक की भाषा हो सकती है अथवा कोई तीसरी भाषा भी हो सकती है। यह सम्पर्क केवल बातचीत के स्तर तक ही सीमित न होकर, व्यवहार के सभी क्षेत्रों तक विस्तृत होती है, जैसे शिक्षा का क्षेत्र, व्यापार का क्षेत्र इत्यादि। सम्पर्क भाषा का अत्यधिक महत्व होता है। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले लोगों के बीच सम्पर्क के लिए एक भाषा का होना अवश्यम्भावी है भारत में अनेक भाषाएँ प्रयोग में लाई जाती हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तक और गुजरात से उत्तर-पूर्व तक अनेक भाषा और बोलियाँ बोलने वाले लोग रहते हैं। ये लोग देश के एक भाग से दूसरे भाग की यात्रा शौक के लिए नहीं, व्यापार व्यवसाय, शिक्षा, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक कार्यों के लिए भी करते हैं। अतः ऐसी भाषा की जरूरत स्वाभाविक है, जिसमें पंजाबी बोलने वाला गुजराती बोलने वाले से तथा उड़िया बोलने वाला तेलुगु बोलने वाले के साथ विचारों का आदान-प्रदान कर सके। इस प्रयोजन को सिद्ध करने वाली भाषा सम्पर्क भाषा कहलाती है। भारत में अनेक भाषा-भाषी लोग रहते हैं। सम्पर्क के लिए एक भाषा की अनिवार्यता है। पूर्व सोवियत संघ में भी अनेक भाषाएँ बोली जाती थीं, किन्तु रूसी वहाँ की सम्पर्क भाषा थी।

कमल पंत के अनुसार-"भारत में प्राचीन काल में संस्कृत सम्पर्क भाषा की भूमिका निभाती रही, लेकिन धीरे-धीरे यह स्थान हिन्दी ने ले लिया है।" राजभाषा भारतीय संविधान के भाग 17 में अनुच्छेद 343 से 350 ख तक राजभाषा के रूप में हिन्दी का उल्लेख किया गया है। राजभाषा के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं जिनमें प्रमुख हैं डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सैना के शब्दों में-"जो भाषा किसी राज्य के सरकारी कार्यों में सर्वाधिक प्रयुक्त होती है, उसे राजभाषा कहते हैं। राजभाषा में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारें अपने पत्र-व्यवहार किया करती हैं। सरकारी आदेश एवं आज्ञाएँ भी इसी भाषा में मुद्रित होती हैं और केन्द्र एवं प्रदेशों के मध्य सम्पर्क स्थापित का कार्य भी इसी भाषा के द्वारा होता है। राजभाषा सदैव देश में शासनात्मक राज्य की स्थापना में बड़ी सहायता पहुँचाती है।"

नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार-"राजभाषा किसे कहते हैं, जो केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारोंद्वारा पत्र व्यवहार, राज्य कार्य और अन्य सरकारी लिखा पढ़ी के काम में लाई जाए। भारत की मुख्य विशेषता विभिन्नता में एकता है। भारत में विभिन्नता का स्वरूप न केवल भौगोलिक है, बल्कि यह भाषाई तथा सांस्कृतिक भी है। संविधान द्वारा पहले केवल 14 भाषाओं को राजभाषा की मान्यता दी गयी थी, लेकिन 21वें संविधान संशोधन द्वारा सिन्धी को तथा 71वें संविधान संशोधन द्वारा नेपाली, कोंकणी तथा मणिपुरी को भी राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया है। 100 वें संविधान संशोधन द्वारा डोंगरी, मैथिली, संथाली व बोडो भाषाओं को आठवीं अनुसूची में शामिल कर लिया गया। इन 22 भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी भी सहायक राजभाषा है और यह मिजोरम, नागालैण्ड तथा मेघालय की राजभाषा भी है। वर्तमान में संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएँ सम्मिलित है जो क्रमशः हैं-असमिया, बंगला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, सिन्धी, तमिल, तेलुगू, उर्दू, डोंगरी, मैथिली, संथाली व बोडो है। नवगठित राज्य छत्तीसगढ़ के द्वारा छत्तीसगढ़ को आठवी अनुसूची में शामिल कराने का प्रयास राज्य सरकार के द्वारा किया जा रहा है।

संघ की भाषा

'संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी, लेकिन संविधान लागू होने के 15 वर्षों की अवधि तक अर्थात् 1965 ईसवी तक संघ की भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाना है और संसद को यह

अधिकार दिया गया था कि वह चाहे तो संघ की भाषा के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग की अवधि को बढ़ा सकती थी। इसलिए संवाद ने 1963 ईसवी में राजभाषा अधिनियम, 1963 ईसवी में राजभाषा अधिनियम, 1963 पारित करके यह व्यवस्था कर दी कि संघ भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग 1971 ईसवी तक करता रहेगा। लेकिन इस नियम में संशोधन करके यह व्यवस्था कर दी गई कि संघ की भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग अनिश्चित काल तक होता रहेगा। क्रॉनिकल ईयर बुक 2006, क्रॉनिकल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 160.

भारत में मातृभाषा, राष्ट्रभाषा एवं सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी की भूमिका

(1) सीखने में सरल-हिंदी सीखने में अन्य भाषा की तुलना में अधिक सरल है। अंग्रेजी भाषा की तुलना में हिंदी अत्यन्त ही सरल है। हिन्दी भाषा में अक्षरों की अधिकता, उच्चारण तथा लिखावट में समानता होने के कारण भी यह सीखने में सरल है।

(2) **भारतीय सभ्यता और संस्कृति का परिचायक-**हिन्दी वर्तमान में भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का परिचायक हो चुका है। हिन्दी भाषा का उद्गम भारत से ही माना जाता है तथा भारत संस्कृति तथा सभ्यता का प्रतिबिम्ब हिन्दी भाषा में प्रदर्शित होता है।

(3) सभी क्षेत्रों में सक्षम-हिन्दी भाषा भारत के राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, शिक्षा सम्बन्धी सभी कार्य चलाने में हिन्दी पूरी तरह समर्थ है। हिन्दी भाषा में सभी क्षेत्रों में लिखितअनेक साहित्य उपलब्ध है तथा उच्च शिक्षा में भी हिन्दी भाषा का व्यापक प्रयोग किया जा रहा है।

(4) सर्वाधिक लोगों की भाषा-भारत में 22 अनुसूचित भाषाओं में सर्वाधिक लोगों के द्वारा बोली और समझे जानी वाली भाषा हिन्दी है। देश की लगभग 60 प्रतिशत जनता इसे बोलती है। इससे कहीं अधिक लोग इसे समझते हैं।

(5) विचार विनिमय का माध्यम-हिन्दी भाषा भारत में विचार विनिमय का सशक्त माध्यम बन चुका है। हिन्दी भाषा जानने वाले भारत के सभी क्षेत्रों में सरलता से मिल जाएँगे। हिन्दी भाषा के माध्यम से विचार विनिमय सरल हो चुका है। इसमें हिन्दी सिनेमा तथा मीडिया का सशक्त योगदान रहा है।

(6) आत्मीयता का अहसास-हिन्दी भाषा का प्रयोग भारत के विभिन्न राज्यों के लोग मातृभाषा, राष्ट्रभाषा तथा संपर्क भाषा के रूप में करते हैं। इससे भारत के विभिन्न नागरिकों में आत्मीयता का अहसास होता है। यह केवल भारत ही नहीं, भारत के बाहर भी यदि कोई हिन्दी-भाषी व्यक्ति आपस में मिलते हैं तो उनमें आत्मीयता की भावना का अहसास होता है।

(7) अस्मिता का बोध-हिन्दी भारत की राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक बन चुका है। हिन्दी का प्रयोग भारत के विभिन्न राज्यों के साथ साथ विदेशों में भी हो रहा है। विदेशों में हिन्दी भाषा को भारतीय भाषा के रूप में महत्व प्रदान किया जाता है जिससे हिन्दी भारत की एक विशेषता बन चुकी है।

(8) सम्प्रेषण सरल एवं प्रभावी-हिन्दी का उच्चारण तथा लेखन समान होने के कारण यह सम्प्रेषण की दृष्टि से सरल एवं प्रभावी होता है। हिन्दी भाषा जानने वाले भारत के किसी भी कोने में सम्प्रेषण में सहज महसूस करते हैं।

(9) स्वतन्त्र राष्ट्र के अस्तित्व का बोध-प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र की अपनी भाषा, लिपि, धर्म, संस्कृति होती है। लेकिन भारत में राजनैतिक प्रतिबद्धता के अभाव में किसी एक भाषा को यह स्थान प्राप्त नहीं हो पाया है। लेकिन हिन्दी भाषा धीरे-धीरे यह स्थान बनाने में सफल हो रहा है जिससे सभी भारतीयों को भारत के स्वतन्त्र राष्ट्र होने का बोध हो रहा है।

(10) शासन संचालन में सुविधा-भारत के बड़े वर्ग में हिन्दी भाषा के प्रयोग किए जाने से शासन संचालन में भी सुविधा हो रही है। हिन्दी आम जनता की भाषा बन चुकी है। हिन्दी भाषा का व्यापक प्रयोग शासकीय कार्यों में किया जा रहा है, जिससे शासन संचालन में भी सुविधा हो रही है।

(11) राष्ट्रीय समारोहों में प्रयोग-हिन्दी का प्रयोग भारत सरकार के द्वारा आयोजित किए जाने वाले विभिन्न राष्ट्रीय समारोहों में किया जा रहा है जिससे हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में जाना जा सकता है। इस प्रकार अनेक बिन्दुओं के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि हिन्दी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा तथा संपर्क भाषा के रूप में भारत ही नहीं बल्कि विश्व में भी अपनी विशिष्ट पहचान बना चुका है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म फेस्टिवल, फिल्म अवार्ड कार्यक्रमों में हिन्दी फिल्मों तथा हिन्दी गीतों का प्रदर्शन हिन्दी भाषा के महत्व को स्पष्ट करता है।

हिन्दी भाषा को मातृभाषा, राष्ट्रभाषा तथा सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकारते हुए अनेक विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किए है जिनमें प्रमुख हैं:-

फादर कामिल बुल्के के अनुसार-सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी की योग्यता के विषय में मेरा विनम्र निवेदन यह हैं कि हिन्दी केवल देश की ही नहीं बल्कि बोलने-समझने वालों की संख्या में यह दुनिया की तीसरी भाषा है। अतः जब तक हम स्वयं हिन्दी को अपनी राष्ट्र भाषा नहीं बनायेंगें, अगर यूँ ही लड़ते-झगड़ते रहेंगे तो कोई इसके महत्व को क्या समझेगा ? अतः सबसे पहले उसे अपने देश में लागू करना है और इतना अधिक समृद्धशाली बनाना है कि दुनिया के सभी लोग इसे सीखने तथा बोलने का प्रयत्न करें।"

सुभाष चन्द्र बोस के अनुसार-"प्रान्तीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता हिन्दी के प्रचार-प्रसार से मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीज से नहीं मिल सकती। अपनी प्रान्तीय भाषाओं की भरपूर उन्नति कीजिए, उसमें कोई बाधा नहीं डालना चाहता और न हम किसी की बाधा को सहन ही कर सकते हैं पर सारे प्रान्तों की सार्वजनिक भाषा का पद हिन्दी या हिन्दुस्तानी को ही मिला है।"

सी. टी. मेटकॉफ के अनुसार-"कोलकाता से लेकर लाहौर तक, कुमाऊँ के पहाड़ों से लेकर नर्मदा नदी तक भारत (तब अविभाजित) के जिस हिस्से में भी मुझे काम करना पड़ा, मैंने उसी भाषा का आम व्यवहार देखा। मैं कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक या जावा से सिन्धु तक इस विश्वास के साथ यात्रा की हिम्मत कर सकता हूँ कि मुझे हर जगह ऐसे लोग मिल जाएँगे, जो हिन्दुस्तानी बोल सकते होंगे।" (1806 ई. में अपने गुरू फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के प्रथम अध्यक्ष जॉन गिलक्राइस्ट को लिखे पत्र में)

डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद के अनुसार-"हिन्दी भारत की सामान्य जनता की भाषा है, देश की एकता की सम्पर्क भाषा है, साधु-संतों की भाषा है और देश की केन्द्रीय शक्ति है। ऐसी विकसित भाषा का सीमित क्षेत्र नहीं हो सकता। हरदेव प्रसाद बाहरी के अनुसार-"भारत की विभिन्न भाषाओं में हिन्दी ही एकमात्र भाषा है जो सारे देश में ही नहीं विदेशों में भी बोली और समझी जाती है।"

पण्डित मनमोहन मालवीय के अनुसार-"हिन्दी भारत के बहुसंख्यक वर्ग की भाषा है अतः इसे ही राष्ट्रभाषा बनाना चाहिए और इसे ही शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए। उपर्युक्त विद्वानों के विचारों से स्पष्ट होता है कि हिन्दी ही भारत में राष्ट्र भाषा तथा सम्पर्क भाषा के रूप में स्थान पाने की अधिकारिणी है, इस हेतु सभी भारतवासी को एक होकर प्रयास करना चाहिए। हिन्दी का विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा में भी व्यापक रूप में प्रयोग किए जाने की आवश्यकता है। हिन्दी की एकमात्र प्रतियोगी भाषा अंग्रेजी है, जब तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बोलचाल तथा शिक्षा में कम नहीं किया जाएगा, हिन्दी का विकास अवरुद्ध होता

ही रहेगा।

राज (सरकारी) भाषा और भिन्न-भिन्न देश

भिन्न-भिन्न देशों में राज या सरकारी भाषा सम्बन्धी अवस्थाएँ अलग-अलग दिखलाई देती हैं, यथा

1. छोटे-छोटे देशों में, वहाँ के निवासियों की मातृभाषा ही, वहाँ की राज या सरकारी भाषा होती है; यथा-भूटान, फिनलैंड, आइसलैंड, पनामा आदि।

2. कई बड़े देशों में अलग-अलग क्षेत्रों में बोली जाने वाली भाषाएँ भिन्न होती हैं, परन्तु वहाँ की राजभाषा एक होती है, यथा-संयुक्तराज्य अमेरिका के भिन्न-भिन्न राज्यों की अलग-अलग भाषा है,परन्तु राज या सरकारी भाषा अंग्रेजी है। इंग्लैण्ड वेल्स, स्काटलैण्ड आदि क्षेत्रों की अलग-अलग भाषाएँ हैं, परन्तु वहाँ की राज या सरकारी भाषा अंग्रेजी है। दक्षिण अमरीका में अलग -अलग राज्य में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं, परन्तु वहाँ की राज या सरकारी भाषा स्पेनिश है।

3. कुछ ऐसे भी देश पाए जाते हैं, जहाँ एक से अधिक राज या सरकारी भाषाएँ पाई जाती हैं, यथा-कैनेडा में अंग्रेजी और फ्रेंच दो राज या सरकारी भाषाएँ हैं, यद्यपि क्यूबैक में (जहाँ फ्रांसीसी जनसंख्या अधिक है) राज-काज फ्रेंच में होता है, तथा शेष केनेडा में (जहाँ अंग्रेजों की आबादी अधिक है) वहाँ कामकाज अंग्रेजी में होता है। स्विट्जरलैंड की जनसंख्या तीन प्रकार के लोगों में विभाजित होने के कारण वहाँ तीन राज भाषाएँ हैं-जर्मन, फ्रेंच और इटालियन।

भारतीय संविधान और हिन्दी

संविधान में स्वीकृत भारतीय भाषाएँ:-

भारतीय संविधान के अध्याय 3, अनुच्छेद 3441351 के अनुसार ये पन्द्रह भारतीय भाषाएँ स्वीकार की गई है

असामिल,कन्नड़,) तमिल,) मराठी,) संस्कृत,उड़िया,कश्मीरी,तेलुगु,मलयालम,सिन्धी,उर्दू,गुजराती,पंजाबी,बंगला,हिन्दी।

ये सभी भाषाएँ पर्याप्त मात्रा में विकसित हैं।

संस्कृत, सिन्धी और उर्दू को छोड़कर, इन भाषाओं के बोलने वाले करोड़ों लोग हैं और इनका क्षेत्र तथा राज्य भी क्षेत्रफल की दृष्टि से पर्याप्त विस्तृत है। हिन्दी भाषा बोलने और समझने वालों की संख्या सबसे अधिक है। इनका क्षेत्र भी अन्य भाषा-भाषियों की अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत है, यथा:-

उत्तर प्रदेश,

राजस्थान,

हरियाणा।

मध्य प्रदेश,

दिल्ली,

बिहार,

हिमाचल प्रदेश,

यद्यपि इन विस्तृत क्षेत्र में कई बोलियाँ या उपभाषाएँ हैं, हिन्दी भाषा-भाषी ही माने जाते हैं। शताब्दियों से भारतवर्ष में कश्मीर से कन्याकुमारी तक, द्वारका से कामाख्या तक आने-जाने वाले तीर्थ-यात्री, साधु-सन्त-महात्मा हिन्दी के माध्यम से ही अपना काम चलाते आए हैं। भारतीय रेलों में यात्रा करने वाले भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी भी हिन्दी भाषा में अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।

स्वतन्त्रता से पूर्व, भारत की अधिकांश जनता ने हिन्दी को ही राष्ट्र भाषा के रूप में अपनी मौन स्वीकृति दे दी थी। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में, अहिन्दी भाषियों का अमूल्य योगदान रहा है पंजाब में गुरु नानक देव हिन्दी के अच्छे कवि और ज्ञाता रहे हैं। गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में हिन्दी कवियों का समूह था। उन्होंने गोविन्द रामायण (काव्य) तथा विचित्तर नाटक आदि ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे हैं। बाबा फरीद और बुल्ले शाह हिन्दी के अच्छे ज्ञाता रहे हैं। **गुजरात** के दादूदयाल, महात्मा प्राणनाथ, स्वामी दयानन्द सरस्वती, गाँधी आदि अच्छी सेवा की है।

महाराष्ट्र के मुकुन्द राज, सन्त नामदेव, सन्त समर्थ रामदास से लेकर लोकमान्य तिलक तथा अनेक कवियों, साधु-सन्तों, समाज -सेवकों, राजनीतिज्ञों ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपूर्व योगदानकिया है।

कर्नाटक में टीपू सुल्तान के जमाने से पहले ही वहाँ हिन्दी गद्य-पद्य साहित्य उपलब्ध था। केरल के तिरुवनंतपुरम के राजा हिन्दी के प्रेमी थे और हिन्दी के विद्वान् का सम्मान किया करते थे।

तमिलनाडु में प्रचलित “हरि कथा" के मध्य में कबीर, तुलसी, सूरदास, मीरा के गीत गाए जाते थे।

आन्ध्र प्रदेश में उड़िया की पुस्तक *समर-तरंग" का चौथा अध्याय हिन्दी में ही लिखा हुआ है।

बंगाल के अनेक वैष्णव कवियों ने अवधी, मैथिली, ब्रजभाषा आदि में कविताएँ लिखी हैं। राजा राममोहन राय ने सबसे पहले कहा था-*भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है। हिन्दी का प्रथम मुद्रणालय कोलकाता में ही स्थापित हुआ था। "बंगदूत" नागरी लिपि में भी मुद्रित होता था। मणिपुर तथा असम के वैष्णव राजाओं में अपने धार्मिक साहित्य तथा राज-काज हिन्दी को भी स्थान दिया था।

ये क्रम स्वतन्त्रता से पूर्व आधुनिक काव्य में भी जारी रहा।

1. दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार-इसकी स्थापना 1918 ई. में गाँधीजी की प्रेरणा से डॉ. रामास्वामी अय्यर की अध्यक्षता में डॉ. ऐनी बेसेन्ट ने की सभी की ये चार शाखाएँ हिन्दी का प्रचार-प्रसार और शिक्षण-कार्य कर रही हैं

(i)हैदराबाद (आंध्र प्रदेश),(ii) धारवाड़ (कर्नाटक),(iii) तिरुचिरापल्ली (तमिलनाडु), (iv) एर्णाकुलम (केरल)। सभी को मासिक पत्र "हिन्दी समाचार", द्विमासिक पत्र "दक्षिण भारत" प्रकाशित करती है।सभा प्रथमा, मध्यम, प्रवेशिका, प्रवीण, हिन्दी-प्रचारक परीक्षाएँ चलाती है सभा के नई दिल्ली कार्यालय में हिन्दी के माध्यम से दक्षिण-भाषाएँ सिखाई जाती हैं। सभा छोटी-बड़ी लगभग पाँच सौ पुस्तकें प्रकाशित कर चुकी है। सभा ने 1964 ई. में एक स्नातकोत्तर अध्ययन तथा अनुसन्धान विभाग स्थापित किया है।

2.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)-इसकी स्थापना 1935 ई. में हुई। सभा ने अब तक लगभग तीन सौ पुस्तकें प्रकाशित की हैं इनमें ये उल्लेखनीय हैं:-

(क) हिन्दी-इतर भाषाओं का साहित्य तथा इतिहास, (ख) तेलुगु- हिन्दी शब्द-कोश। सभी नागरी-बोध (प्राथमिक) से लेकर वाचस्पति (स्नातकोत्तर स्तर) तक की कई परीक्षाओं का संचालन करती है।

3. केरल हिन्दी प्रचार सभा तिरुवनन्तपुरम-इसकी स्थापना 1934 ई. में हुई। वासुदेवत् पिल्लै ने इसकी स्थापना की। यह निम्नलिखित परीक्षाओं का संचालन करती है प्रथमा, मध्यमा, राष्ट्रभाषा-प्रवेश, भूषण (दो खण्ड), साहित्याचार्य (दो खण्ड) तथा आचार्य सभा ने अपने मुद्रणालय में कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सभा एक मासिक पत्रिका "केरल-ज्योति" भी प्रकाशित करती है।

4. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा-इसकी स्थापना गाँधीजी की प्रेरणा के 1936 में हुई। समिति का कार्य-क्षेत्र सभी इतर प्रदेश हैं। इसकी मासिक पत्रिका का नाम है-"राष्ट्रवाणी"। इसने अब तक लगभग तीन सौ पुस्तकें प्रकाशित की हैं, इनमें उल्लेखनीय हैं

(i) भारत-भारती पुस्तक माला, (ii) राष्ट्र भाषा कोष।

देश के भीतर और देश से बाहर भी, इसने अपने कई प्रचार विद्यालय स्थापित किए हैं, इसकेपास दो बड़े पुस्तकालय हैं। समिति कई परीक्षाएँ संचालित करती है। 5. मैसूर हिन्दी प्रचार सभा बेंगलुरु-इसकी स्थापना 1942 ई. में हुई। सभा कई परीक्षाओं का संचालन करती है। इसके पास अपना विशाल पुस्तकालय है। यह अब तक लगभग एक सौ पचहत्तर पुस्तकें प्रकाशित कर चुकी है। राष्ट्र सेवक" इसका मासिक पत्र है।

भारतीय संविधान और राजभाषा हिन्दी

भारतीय संविधान में राज या सरकारी भाषा के सम्बन्ध में ये धाराएँ उपलब्ध होती हैं **राज भाषा-**

अध्याय 1 संघ की भाषा-343 (1) संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए, अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर राष्ट्रीय रूप होगा।

(2) खण्ड (1) में से किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारम्भ के पन्द्रह वर्षों की कालावधि के लिए संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयुक्तहोती रहेगी, जिनके लिए ऐसे प्रारम्भ के ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी। अध्याय-2 प्रादेशिक भाषाएँ-345, अनुच्छेद 346 और 347 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राज्य का विधानमण्डल, विधि द्वारा, उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब अथवा किसी के प्रयोग के लिए, उस राज्य में प्रयुक्तहोने वाली भाषाओं में से, किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा।

अध्याय-3 उच्चतम न्यायालय, न्यायालयों की भाषा 351-हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना, उसका विकास करना, ताकि वह भारतवर्ष की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसमें हस्तक्षेप किए बिना हिन्दी और अष्टम सूची में उल्लिखित, अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहाँ तक आवश्यक या वांछनीय है, वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए "मुख्यतः संस्कृत के तथा सौगातः ऊपर लिखित भाषाओं में से शब्द ग्रहण करते हुए, उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।

हिंदी को ही राज (सरकारी) भाषा, सम्पर्क भाषा को राष्ट्रभाषा का स्थान क्यों दिया गया ? इस सम्बन्ध में जो बातें कही जा सकती हैं, वे हैं

1. देश-राष्ट्र की आधी से अधिक जनसंख्या इसका मातृभाषा या प्रथम भाषा के रूप में प्रयोग या व्यवहार करती है।

2. हिन्दी उसी मध्य देश की भाषा है, जिसकी भाषाएँ प्राचीन काल से ही भारत राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एकता का माध्यम रही है।

, 3.हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में पंजाब भाषा, उर्दू भाषी पारसी, भारत के ईसाई, महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल के अधिकांश लोग, तमिलनाडु के श्रमिक कुली आदि। असम के चाय बागान केमजदूर, छोटे-बड़े दुकानदार दशाब्दियों से प्रयोग में लाते रहे हैं।

4. हिन्दी भाषा की सरल, सुबोध तथा नमनीय प्रकृति के कारण, हिन्दी इतर भाषा-भाषियों को सम्पर्क भाषा के रूप में, हिन्दी सीखने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। रही है। 5. हिन्दी को साहित्यिक-वाङ्मय परम्परा अन्य राष्ट्रीय भाषा के समान ही पर्याप्त विकसित

6. स्वतन्त्रता के आन्दोलन के समय, राष्ट्रीयता की भावना का जागरण और पोषण, हिन्दी के माध्यम से ही किया गया।

7. भिन्न-भिन्न प्रदेशों में आवागमन करने वाली यात्री, व्यापारी, साधु-महात्मा आदि अपने दैनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक क्रियाकलापों के लिए हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं।

शिक्षा आयोगों तथा शिक्षा समितियों के सुझाव

आयोगों ने इस सम्बन्ध में वही कहा है, जिसका उल्लेख 'शिक्षा के माध्यम' के अन्तर्गत पीछे किया गया है। आयोगों ने जो कुछ भी कहा है वह शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में अधिक है; न कि 'राष्ट्रभाषा की समस्या के समाधान के सम्बन्ध में। फिर भी, जो कुछ कहा गया है, उसकी क्रियान्विति के परिणामस्वरूप यदि समूचे राष्ट्र में हिन्दी का प्रचार-प्रसार उसी प्रकार हो गया होता जिस प्रकार अंग्रेजों की दूरदर्शिता पूर्ण नीतियों के परिणामस्वरूप अंग्रेजी भाषा समूचे भारत में छा गयी, तो सम्भवतः अब तक राष्ट्रभाषा की समस्या का समाधान भी कभी का हो गया होता परन्तु ऐसा हुआ

नहीं। इन प्रयोगों ने '**शिक्षा के माध्यम**' के सम्बन्ध में जो कुछ भी अनुशंसाएँ की, उनकी क्रियान्विति हेतु केन्द्र सरकार ने समस्या को आगे से आगे टालने की दृष्टि से नीति-निर्धारक समितियों का गठन कर दिया, समितियों ने अपने सुझाव दे दिये। सुझावों की क्रियान्विति कराना पुनः केन्द्र सरकार का दायित्व था। लेकिन प्रत्यक्ष रूप में 'भाषा के माध्यम तथा अप्रत्यक्ष रूप से 'राष्ट्र भाषा' की समस्या अब भी ज्यों की त्यों ही नहीं, उत्तरोत्तर जटिल होती चली जा रही है।

भाषाओं के विकास हेतु राष्ट्रीय नीति (National Policy for the Development of Languages)

इसका सूत्रपात सन् 1968 में हुआ तत्पश्चात्, जब-जब राष्ट्रीय शिक्षा की कोई नीति निर्धारित की गयी उसने इस सम्बन्ध में जो अनुशंसाएँ की उनका उल्लेख संक्षेप में आगे किया जा रहा है

(अ) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 (National policy of education, 1968)-केन्द्र सरकार ने सभी आयोगों द्वारा शिक्षा के भाषायी माध्यम के सम्बन्ध में जिन भाषा-सूत्रों की अनुशंसा की-उन सभी का अध्ययन करने के पश्चात्, माध्यमिक स्तर की शिक्षा हेतु जिस सूत्र की स्थापना की, उसके अनुसार तीन भाषाओं के अध्ययन को निम्नलिखित रूप में मान्यता प्रदान की। माध्यमिक स्तर तक के विद्यार्थियों को तीन भाषाएँ पढ़ना अनिवार्य होगा, जो हिन्दी भाषा-भाषी तथा अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में अलग-अलग निम्नलिखित प्रकार होगा

(1) हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में राजनैतिक प्रयास-हिन्दी तथा अंग्रेजी के साथ-साथ किसी भी एक दक्षिण-भारतीय भाषा का अध्ययन।

(2) अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में राजनैतिक प्रयास-हिन्दी, अंग्रेजी तथा कोई भी एक क्षेत्रीय इसी के साथ-साथ अलग-अलग भारतीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं के विकास की दृष्टि से जो कुछ भी कहा गया, उसका सार इस प्रकार है (Regional) भाषा।

1. संस्कृत (Sanskrit भाषा हेतु राजनैतिक प्रयास-भारतीय भाषाओं के विकास के इतिहास का यदि अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि सभी भारतीय भाषाओं यहाँ तक तमिल, तेलगू, कब्ज तथा मलयालम दक्षिण भारतीय भाषाओं में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का बाहुल्य मिलेगा इस सत्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा नीति में कहा गया है कि

(1) राष्ट्र की भाषायी तथा सांस्कृतिक एकता में 'संस्कृत' भाषा के महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण-इसके अध्ययन को बढ़ावा दिया जाय।

(2) माध्यमिक तथा उच्च-दोनों ही स्तरों पर पुस्तकों आदि की सुविधाएँ यथासम्भव उपलब्ध करायी जायें।

(3) संस्कृत-शिक्षण को सरल बनाने की दृष्टि से नयी शिक्षण-विधियों की खोज की जाय।

(4) भारत की प्राचीन संस्कृति और विशेषकर 'दर्शनशास्त्र' (Philosophy) तथा 'अध्यात्म' आदि के अध्ययन हेतु, उपाधि स्तर के अध्ययन में संस्कृत भाषा का विशेष महत्त्व होने के कारण इसके अध्ययन की सम्भावनाओं का पता लगाया जाय।

2. हिन्दी (Hindi) भाषा हेतु राजनैतिक प्रयास-

(1) हिन्दी भाषा के विकास तथा हर स्तर पर अध्ययन हेतु हर सम्भव प्रयास किये जायें

(2) सम्पर्क भाषा (Link language) के रूप में हिन्दी भाषा को विशेष बढ़ावा देने की दृष्टि से दूसरे (other) भाषा-भाषियों की भावनाओं एवं विचारों का भी ध्यान रखा जाय।

(3) स्वैच्छिक संस्था आदि जो भी हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में यदि 'हिन्दी भाषा के माध्यम से माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर शिक्षा देना चाहें तो ऐसी संस्थाओं को विशेष रूप से मान्यता प्रदान की जाय।

8. क्षेत्रीय (Regional) भाषाओं हेतु राजनैतिक प्रयास-क्षेत्रीय संस्कृति, सामाजिक रीति-नीति तथा परम्पराओं में सामंजस्य बिठाना जन-एकता की दृष्टि से बहुत ही अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। उन्हें जितना साहित्य तथा सीमित ज्ञान का जो भण्डार भरा पढ़ा है, उसको समूचे भारत में प्रचारित एवं प्रसारित करने की दृष्टि से

(1) भारत की वृहद्-संस्कृति को जानने तथा समझने की दृष्टि से उनका विकास क्रिया जाना चाहिये।

(2) क्षेत्रीय साहित्य का अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओं; विशेषकर हिन्दी भाषा में किया जाय।

(3) उच्च स्तर की शिक्षा में भी क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन को भरपूर बढ़ावा दिया जाय।

4. अन्तर्राष्ट्रीय (International) भाषाओं हेतु राजनैतिक प्रयास-जिस प्रकार क्षेत्रीय भाषाओं का प्रचार-प्रसार समूचे राष्ट्र को संगठित रखने में सहायक सिद्ध होता है, ठीक उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय भाषाएँ और उनमें भी विशेषकर वे भाषाएँ जो विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में विचार विनिमय की दृष्टि से अधिक से अधिक लोगों के द्वारा जानी और समझी जाती हैं, उनको सीखना और समझना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से विश्व के अधिक से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं, विशेषकर अंग्रेजी के अध्ययन को बढ़ावा दिया जाय; क्योंकि:-

(क) विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में जो विकास वर्तमान समय में हो रहा है, उसका अधिकतरसाहित्य इसी भाषा में है।

(ख) अंग्रेजी ही विश्व की एक बहुप्रचलित अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है, जिसके जानकार सभी देशों में मिल ही जाते हैं।

(ग) वैज्ञानिक खोजों पर आधारित सर्वाधिक साहित्य इसी भाषा में है।

अतः अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को बढ़ावा देने की दृष्टि से अंग्रेजी के अध्ययन को भी उचित महत्त्व 77दिया जाना चाहिये।

(ब) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1979 (National policy of education, 1979)-इस शिक्षा-नीति में विशेष कुछ न कहकर, वे ही बातें दुहरायी गयी हैं, जिनका उल्लेख विभिन्न शिक्षा-आयोगों ने अपनी-अपनी अनुशंसाओं के रूप में किया है। इसका उल्लेख वैसे तो शिक्षा-नीति 1968 के प्रारम्भ में ही कर दिया गया है फिर भी इसमें कहा गया है कि

(1) प्राथमिक स्तर (Primary level) की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से ही हो।

(2) शिक्षा के उच्च प्राथमिक तथा आगे के स्तरों पर भी यथासम्भव क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।

(3) माध्यमिक स्तरीय शिक्षा हेतु 'त्रिभाषा सूत्र' को अपनाया जाय। साथ ही ये तीन भाषाएँ हिन्दी भाषा-भाषी तथा अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में अलग-अलग हों; अर्थात्

(i) हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में प्रयास-हिन्दी, अंग्रेजी तथा कोई भी एक दक्षिण-भारतीय भाषा। (ii) अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में प्रयास-हिन्दी तथा अंग्रेजी के साथ किसी भी एक क्षेत्रीय भाषा का अध्ययन किया जाय।

(स) राष्ट्रीय शिक्षा-नीति 1986 (National policy of education, 1986)-राष्ट्रीय भाषा शिक्षा-नीति सन् 1986 का यदि गहरायी से अध्ययन किया जाय तो 18 वर्ष पश्चात् भी उसकी अनुशंसाएँ लगभग वही हैं जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 की थीं। 'त्रिभाषा सूत्र अनुशंसा इस नीति के अन्तर्गत भी की गयी है किन्तु साथ ही साथ उन कारणों का भी पता लगाने के पश्चात् ही कुछ कहा गया है जो 'त्रिभाषा-सूत्र' की क्रियान्विति के पश्चात् भी आशानुरूप परिणाम न दे सके। इनमें से कुछ कारण आगे

दिये जा रहे हैं:-

1.त्रिभाषा सूत्र की क्रियान्विति की समीक्षा

(1) 'त्रिभाषा-सूत्र' के अनुसार माध्यमिक स्तर तक तीन भाषाओं के अध्ययन में विद्यार्थियों को कोई विशेष कठिनाई न होने के करण उसकी अनुपालना तो ही रही है, लेकिन यथानुशंसा नहीं।

(2) हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में त्रिभाषा सूत्र की क्रियान्विति हेतु स्पष्ट रूप से शिक्षा नीति 1968 में कहा गया था कि हिन्दी तथा अंग्रेजी के अध्ययन के साथ-साथ तीसरी भाषा के रूप में किसी भारतीय भाषा को और वह भी विशेषकर, दक्षिण भारतीय भाषा को अवश्य पढ़ाया जाय-इसकी क्रियान्विति की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

(3) कुछ राज्यों में, जिनकी क्षेत्रीय भाषा-प्राचीन भारतीय भाषाओं से अधिक मेल खाती है, उनका अध्ययन करता जा रहा है, न कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में से किसी एक का

(4) तीनों भाषाओं की अध्ययन अवधि में सभी राज्यों में एकरूपता नहीं है।

2. इन कमियों को कैसे दूर किया जाये?-इन सुझावों के अन्तर्गत भी कोई ऐसी बात नहीं कही गयी है, जो कमियाँ जहाँ तक जिस रूप में पायी गयीं, उनकी क्रियान्विति को सम्बन्धित व्यक्तियों की मानसिकता में परिवर्तन लाने में सक्षम सिद्ध हो सके। यथार्थतः किसी कार्य की सफलता-असफलता का कारण मूलतः सम्बन्धित लोगों की सकारात्मक अथवा नकारात्मक अभिवृत्ति का ही परिणाम होता है। सकारात्मक अभिवृत्ति सभी बाधाओं को दूर करने में स्वतः ही सक्षम होती है तो नकारात्मक अभिवृत्ति किसी बने-बनाये काम को भी बिगाड़ सकती है। इस दृष्टि से 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986' में त्रिभाषा सूत्र की क्रियान्विति में उन कारणों को दूर करने हेतु जो सुझाव दिये गये हैं, वे आर्थिक पक्ष से सम्बद्ध अधिक हैं, न कि शिक्षा से सम्बद्ध लोगों की मानसिकता में परिवर्तन लाने से ये सुझाव। 1992 की कार्य-योजना में निम्नलिखित सुझावों को सम्मिलित किया गया:-

(1) हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में-तृतीय भाषा के रूप में दक्षिण भारतीय भाषाओं को अनिवार्यतः पढ़ाये जाने की दृष्टि से केन्द्र सरकार अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी शिक्षकों की नियुक्तिहेतु राज्यों केन्द्रशासित प्रदेशों को सहायता प्रदान करती रहेगी।

(2) त्रिभाषा-सूत्र की क्रियान्विति में उपस्थित होने वाली बाधाओं को दूर करने हेतु भी केन्द्र सरकार उचित कदम उठायेगी। यह तो रही माध्यमिक-स्तरीय शिक्षा की बात। विश्वविद्यालयी शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में शिक्षा-नीति में जो अनुशंसा की गयी है, वह इस प्रकार है

3.विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम-

विश्वविद्यालय स्तरीय शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध नीति के अन्तर्गत कहा गया है कि विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा के माध्यम की दृष्टि से आधुनिक भारतीय भाषाओं में से जो मातृभाषा से भिन्न हों-को अपनाने पर विशेष बल दिया जाय। केन्द्र सरकार द्वारा गठित भाषायी समस्या के समाधान हेतु विभिन्न आयोगों की अनुशंसाओं के आधार पर निर्धारित राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों-1968, 1979 तथा 1986 द्वारा जो कुछ भी सुझाव दिये गये, उन्हें पढ़कर ऐसा लगता है कि राष्ट्रहित में इस समस्या के समाधान हेतु सम्बन्धित लोगों, चाहे वे स्वयं को-देशभक्ति कुशल राजनीतिज्ञ बताने वाले नेता हो अथवा नीतियों को क्रियान्विति करने वाले दोनों ही वर्ग इस समस्या को गम्भीरता से ले ही नहीं रहे। पता नहीं, वे इस सत्य को समझते भी हैं या नहीं ? यदि समझते भी हैं तो फिर अनदेखी क्यों करते हैं कि अनेक प्रकार की विविधताओं वाले इस महान राष्ट्र में अदूरदर्शिता भी राजनैतिक निर्णयों ने जिस आरक्षण को संविधान के अनुसार 15 वर्षों में समाप्त हो जाना चाहिये था-उसके आर्थिक आधार को जाति तथा सम्प्रदायगत बनाने का प्रयास करते-करते निरन्तर आगे से आगे बढ़ाया जा रहा है। वह राष्ट्र की एकता को खण्डित कर रहा है। देश के लोगों के पारस्परिक सौहार्द को विद्वेष और घृणा में बदल दिया है, वहाँ यदि राष्ट्र की जनता को

एकता के सूत्र में बाँधने का कोई आधार शेष बचा है तो केवल यही हो सकता है कि सभी राष्ट्रवासियों तथा राष्ट्र की एक ही राष्ट्रभाषा हो। उसे भी राजनैतिक रंग देकर टाला न जाय, उलझाया न जाय। राष्ट्र की जिस हिन्दी भाषा को देश के लगभग 46% लोग भली-भाँति जानते हों तथा अधिक नहीं तो कुछ अपवादों को छोड़कर लगभग 40% लोग भले ही पढ़ और लिख नहीं पाते हों, लेकिन वे भी इस भाषा में अपनी बात कह सकते हों, दूसरों की बातों को सुनकर अच्छी तरह समझ सकते हों, वह भाषा अब तक राष्ट्रभाषा का रूप न ले सके तो उसे राजनैतिक अनिच्छा ही कहा जा सकता है अन्यथा संविधान के अनुच्छेद 343(2) के अनुसार शासकीय कार्यों की दृष्टि से जिस अंग्रेजी भाषा के उपायों को संविधान लागू होने के 15 वर्षों तक अर्थात् 25 जनवरी, 1965 तक का प्रावधान किया गया था, वह आज भी उसी रूप में चल रही है क्योंकि राजभाषा की समस्या को टालने की दृष्टि से राजभाषा अधिनियम 1963 (1967 में संशोधित) के अनुसार यह व्यवस्था कर दी गयी कि हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा सरकारी कामकाज के लिये 25 जनवरी, 1965 के पश्चात् भी जारी रहेगी। यहाँ भी राजनैतिक अनिच्छा स्पष्ट रूप से झलकती है। अधिनियम के संशोधित रूप में अवधि का उल्लेख न कर उसे असीमित समय के लिय आगे बढ़ा दिया गया है। क्या इससे अप्रत्यक्ष संकेत यह नहीं मिलता कि समस्या सुलझाने के स्थान पर उसे ठण्डे बस्ते में डाला जा रहा है ? यह सब कुछ न तो राष्ट्रहित में ही है और न ही राष्ट्रभक्ति की शपथ लेने वाले राजनीतिज्ञों की स्वस्थ मानसिकता का परिचायक।

भाषा के विविध रूप

उद्देश्य और प्रयोग की भिन्नता के अनुसार भाषा के विविध दृष्टिगत रूप होते हैं; जो इस प्रकार है:-

(1) साधारण बोलचाल की भाषा या मातृभाषा।

(2) प्रशासनिक एवं न्याय की भाषा। (3) विज्ञान एवं गणित की भाषा।

(4) वाणिज्य एवं अर्थशास्त्र की भाषा।

(5) सामाजिक भाषा। (6) साहित्यिक भाषा।

(7) अनुवाद की भाषा।(8) संचार माध्यमों की भाषा।

पाठ्यक्रम के अनुसार यहाँ केवल निम्नलिखित तीन भाषा रूपों का वर्णन किया जा रहा है

(1) साहित्यिक भाषा। (2) संचार माध्यमों की भाषा (3) अनुवाद की भाषा।

1. साहित्यिक भाषा

समाज कल्याण को दृष्टिमध्य रखकर लिखी जाने वाली रचनाएँ साहित्य की श्रेणी में आती हैं। शैली की भिन्नता से साहित्य के विविध रूप मिलते हैं, यथा-गद्य साहित्य, पद्य साहित्य, नाट्य साहित्य तथा कथा साहित्य आदि। निबन्ध, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, डायरी, पत्र आदि गद्य की विभिन्न विधाएँ हैं। इनकी भाषा अपेक्षाकृत परिनिष्ठित, परिमार्जित, सुगठित मानक भाषा होती है। महाकाव्य, खण्डकाव्य, प्रबन्धकाव्य, मुक्तक काव्य आदि पद्य साहित्य के रूप हैं। इनकी भाषा सरल, सरस, सुबोध, भावात्मक , काव्यात्मक छन्दबद्ध मानक भाषा या क्षेत्रीय भाषा होती है। इसमें व्याकरण के नियमों में शिथिलता देखने को मिलती है। यहाँ भाव स्पष्टीकरण ही मुख्य ध्येय होता है। नाट्य साहित्य श्रव्य-दृश्य साहित्य की श्रेणी में आता है। इसके दो रूप हैं-एकांकी और नाटक। नाट्य साहित्य की भाषा विषय तथा पत्र के अनुरूप रूपान्तरित होती रहती है। कहानी और उपन्यास तथा साहित्य की विधाएँ हैं। इनकी भाषा पात्र के स्तर और योग्यता के अनुरूप तथा विषय के अनुरूप

ऐतिहासिक, मानक या स्थानीय भाषा जिसे आंचलिक भाषा भी कहते हैं, हो सकती है।

संक्षेप में कहें तो साहित्य की भाषा विविधरूपिणी होती है। वह भाषा के अन्य रूपों से भिन्न होती है। इसमें परिनिष्ठा, परिमार्जन, संगठन, व्याकरणसम्मतता एवं विषयानुकूल आदि गुण विद्यमान होते हैं। इसकी शब्दावली स्टॉक तथा कार्य योजना सुगठित होती है। इसमें जहाँ शुद्ध साहित्यिकता के गुण विद्यमान होते हैं, वहीं स्थानीय या आंचलिक बोलियों का पुट भी होता है।

2. संचार-माध्यमों की भाषा

संचार माध्यम या मीडिया क्या है ? स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में दिन-प्रतिदिन होने वाली घटनाओं की सूचना साधारण जनता तक पहुँचाने वाले माध्यमों को संचार माध्यम या मीडिया कहते हैं।

संचार माध्यम के निम्नलिखित प्रकर हैं

(1) प्रिन्ट मीडिया। (2) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया।

1. प्रिन्ट मीडिया-प्रिन्ट मीडिया से आशय संचार के उस माध्यम से है, जो सूचनाओं को लिखित रूप में जनता तक पहुंचे हैं। समाचार-पत्र, प्रिन्ट मीडिया के अन्तर्गत आते हैं।प्रिन्ट मीडिया की भाषा-प्रिन्ट मीडिया की भाषा का स्वरूप मानक भाषा का होता है। इसकी भाषा में मानक भाषा के समस्त गुण विद्यमान होते हैं। आज-कल सूचना में सजीवता लाने के लिये घटना से जुड़े व्यक्तियों के मुख से उच्चरित क्षेत्रीय भाषा के शब्दों को ज्यों का त्यों भी छाप दिया जाता है किन्तु ऐसी भाषा का प्रयोग नगण्य ही देखने को मिलता है।

2. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया-जिसे संचार माध्यमों में सूचना के प्रसार के लिये इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का आश्रय लिया जाता है, उन्हें इलेक्ट्रॉनिक की श्रेणी में रखा जाता है। आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा मोबाइल फोन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की श्रेणी में आते हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भाषा-विद्युत संचार माध्यमों के द्वारा साधारणतः मानक भाषा का प्रयोग ही किया जाता है किन्तु कतिपय चैनल क्षेत्रीय भाषाओं में भी सूचनाएँ और कार्यक्रम प्रसारित करते हैं। सूचनाओं और घटनाओं के जीवन प्रसारण में आंचलिक बोलियों का आश्रय भी लिया जाता है। यह अधिकांश किसी व्यक्तिविशेष के मुख से उच्चरित ही होता है। जहाँ तक नाटक, धारावाहिक, गीत आदि कार्यक्रमों की भाषा का प्रश्न है, वहाँ विषय एवं अवसर के अनुकूल माने या स्थानीय भाषा का प्रयोग दृष्टिगत होता है। निष्कर्ष रूप में कहा जाय तो विद्युत संचार माध्यमों में भाषा का आधुनिकीकृत रूप प्रयुक्तहोता है, जिसमें मानक भाषा के साथ क्षेत्रीय भाषाओं और अंग्रेजी भाषा का मिश्रण होता है किन्तु अधिकतम् प्रयोग मानक भाषा का ही होता है।

3. अनुवाद की भाषा -

एक भाषा से दूसरी भाषा में परिवर्तित करने की क्रिया को अनुवाद कहते हैं। अनुवाद में शब्दों और वाक्यों को ज्यों का त्यों परिवर्तन नहीं होता। ऐसा करने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है और हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न हो जाती है क्योंकि सभी भाषाओं की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। प्रत्येक भाषा कर्ता, कार्य, क्रिया, लिंग, वचन, काल एवं वाच्य-परिवर्तन आदि के व्याकरणिक नियम अलग-अलग होते हैं। मुहावरों, लोकोक्तियों के प्रयोग में भी भिन्नता देखी जाती है। यही कारण है कि अनुवाद में संदर्भित विषय के भाव का रूपान्तरण होता है, शब्दों और वाक्यों का नहीं।

अनुवाद की भाषा-सटीक अनुवाद करने के लिय अनुवादक को दोनों के मानक रूपों का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। दोनों भाषाओं के व्याकरण का सांगोपांग ज्ञान होने पर ही सही अनुवाद संभव है अन्यथा जैसा कि पूर्व में बताया गया है, अनुवादक

हँसी का पात्र बन जायेगा। अनुवाद की भाषा ऐसी हो कि वह सन्दर्भित विषय के भावों और विचारों को यथासम्भव यथारूप व्यक्त कर सके। कोई भी मुख्य मूल भाव का अंश छूट न जाये अन्यथा अनुवाद अधूरा रह जायेगा। शब्दावली एवं कार्य-योजना सन्दर्भित भाव को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हो। इसके लिये मानक भाषा का प्रयोग श्रेष्ठ रहता है।

भाषा समस्या का समाधान एवं निष्कर्ष -

इन अवधारणाओं तथा विवेचन के आधार पर भाषा सम्बन्धी कुछ ठोस सुझाव दिए जा सकते हैं जिनका उल्लेख यहाँ पर किया गया है।

भारत की अपनी संस्कृति एवं मान्यतायें रही हैं। बहुभाषी देश होते हुए भी एकता और अखण्डता को कोई खतरा नहीं रहा है जबकि रूप के राष्ट्रों का आधार भाषा ही है। भारत का प्रत्येक भाषायी समुदाय सुरक्षित है और आपस में शांतिपूर्ण सह अस्तित्व रहा है। हिन्दी के राज भाषा होने पर भी वे अपनी मातृभाषा को इसलिए नहीं खो सकते कि हम सबकी परम्परायें व संस्कृति के स्रोत एक ही हैं। भारत में भाषाओं की भूमिका या पृष्ठभूमि यूरोप एवं अमेरिका से भिन्न है, इसलिए भारतीय भाषाओं में आपस में न द्वेष हो न ही कविता। केवल प्रतिस्पद्ध्धा है तो अंग्रेजी से और सभी भारतीय भाषायें यह एकजुट होकर महसूस कर रही हैं श्री पी. पण्डित ने पुणे विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित अपने ग्रंथ "इण्डिया एज ए सोशियोलिंग्विस्टिक एरिया' में कहा है- “यूरोप अथवा अमेरिका में दूसरी पीढ़ी प्रभुत्वशाली वर्ग की भाषा के पक्ष में अपनी भाषा को त्याग देती है। भाषा-विस्थापन' वहाँ का प्रतिमान है और 'भाषा-अनुरक्षण' एक अपवाद। भाषाओं का अनुरक्षण क्यों होता है, इस बात से अमेरिका समाज भाषाशास्त्री अपनी जिज्ञासा शुरू करते हैं, जबकि भारतीय समाज भाषाशास्त्री इस बात से अपना अध्ययन शुरू करते हैं। **लोग अपनी भाषा को क्यों त्याग देते हैं ?"**

बी. पंडित ने गुजरात में नदियों से बसे मराठी-भाषियों के अनुभव पर कहा है कि वे लोग में मराठी का प्रयोग करते हैं, पर अपने कार्यक्षेत्र में तथा आसपास के लोगों के साथ गुजराती में बातचीत करते हैं। लगभग यही स्थिति मध्य स्थिति मध्य प्रदेश में बसे मलयालम (मलयालम-हिन्दी) भाषा-भाषियों की भी है जो सच्ची बहुभाषिता के उदाहरण कहे जा सकते हैं। यहाँ अधिशासी या अधीनस्थ वर्ग की बात ही नहीं उठती है। यही स्थिति हिन्दी की उपभाषाओं के साथ भी है। कुछ क्षेत्रीय बोलियाँ जैसे मैथिली, भोजपुरी राजस्थानी या बुन्देलखण्डी अपने अस्तित्व की माँग कर रही है, पर उन सबने अपनी निष्ठा हिन्दी की भाषायी परम्परा से जोड़ी है। क्षेत्रीय बोलियाँ उनकी मूल मातृ भाषा हो सकती हैं। पर हिन्दी वे सब सह-मातृभाषा ही मानते हैं, और लोकव्यवहार या प्रयोग में वे अपनी मूल अमेरिका के उदाहरण में अल्पसंख्यक कभी-कभी अंग्रेजी के पक्ष में दो-तीन पीढ़ी के बाद अपनी भाषायें छोड़ देते हैं। शहरी सम्पर्क में ऐसे सभी क्षेत्रों में हिन्दी भाषा मानक रूप स्वीकृत हो जाता है। हम भूल नहीं सकते हैं कि भारतीय समाज परम्परावादी है और आधुनिक प्रभावों द्वारा पर्यटन या प्रवास द्वारा बहुभाषिकता को सहज बढ़ावा मिलता है। देश का हिस्सा बहुभाषी है और हिन्दी के भविष्य के लिए अच्छा है। कुछ भी हो, भाषा का सापेक्षिक महत्व सरकारी प्रश्रय व संरक्षण से ही बढ़ता है। चूँकि अंग्रेजी बोलने वालों का आजीविका एवं आर्थिक संसाधनों पर अधिकार है, इसलिए अमेरिका में अल्पसंख्यकों द्वारा अंग्रेजी का ग्रहण स्वतः है। एक समय लाभ के अभाव में अंग्रेजी महत्वपूर्ण न थी। हमारे देश में भी अगर जीविका या अच्छी नौकरियों की प्रमुख भाषा अंग्रेजी होगी तो कुछ भी कहें, हिन्दी और भारतीय भाषाओं का स्थान गौण ही रहेगा। भाषा व्यक्तियों को जोड़ती भी है तोड़ती भी है। वह भावनात्मक एकता का कारण भी है और विद्वेष का आधार भी है। इसकी विघटनकारी शक्ति राजनीतिज्ञयों से अच्छी तरह कोई नहीं जानता। क्षेत्रीय गर्व व अस्मिता के प्रतीक के रूप में भाषा द्वारा नये-नये प्रश्न उछाले जा सकते हैं। बंगला-असमिया, तमिल-कन्नड़, हिन्दी, तमिल पिछले वर्षों में कितने अवरोध खड़े कर चुके हैं हम सब जानते हैं। जो तनाव और विद्वेष भाषा द्वारा पैदा होती है, कहाँ तक जा सकते हैं, हम सोच नहीं सकते उर्दू के खिलाफ बंगला की अस्मिता से समानधर्मी देश के टुकड़ों में बंट गया। बेल्जियम, फिनलैंड, आयरलैण्ड, स्कॉटलैण्ड आदि द्विभाषिक क्षेत्र भाषयी तनाव से गुजरते रहे हैं। भाषायी आधार पर प्रांतों के पुनर्गठन की कहानी और उसके परिणाम हम आज भी देखते हैं। यदि हम सभी यह अनुभव करें कि अंग्रेजी हमारी भाषाओं पर हावी हो रही है, जिससे सभी भारतीय भाषाओं के अस्तित्व को खतरा है। हिन्दी के विरोध से क्षेत्रीय भाषाओं को खतरा है और अंग्रेजी को बढ़ावा देना है। हिन्दी से किसी भी क्षेत्रीय भाषा को कोई खतरा नहीं है। यह भी सभी अनुभव करते हैं।

प्राथमिक स्तर पर हिन्दी शिक्षण की स्थिति -

शिक्षा के स्तर के अनुसार देखें तो प्राथमिक स्तर पर हिन्दी शिक्षण की स्थिति की ओर हमारा ध्यान केन्द्रित होना आवश्यक है। प्राथमिक स्तर वह स्तर होता है जिसमें बालक की नींव पड़ती है।जीव यदि मजबूत होगी तो भवन भी मजबूत और स्थायी होगा। प्राथमिक स्तर पर हिन्दी की अनदेखी की जाएगी तो आगे की कक्षाओं में हिन्दी के उच्चारण और वर्तनी में त्रुटियों का समावेश स्वतः ही हो जाएगा। इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाये जा सकते हैं:-

(1) छात्र-छात्राओं में ध्वनियों के शुद्ध उच्चारण पर बल देना।

(2) उन्हें स्वर और व्यंजन वर्णों की पहचान कराना। (3) वर्णों एवं शब्दों की शुद्ध वर्तनी पर ध्यान देना।

(4) मात्राओं की सही स्थिति का ज्ञान कराना हस्त तथा दीर्घ मात्राओं के अन्तर को समझाना।

(5) स्वर और व्यंजनों के संयुक्तरूपों को लिखवाने का अभ्यास कराना। (6) व्याकरण के नियमों की सामान्य जानकारी देना।

(7) सुन्दर लेख लिखने का अभ्यास कराना। (8) बोलकर शुद्ध लिखने की आदत का विकास करना।

(9) विचारें को स्पष्ट तथा क्रमबद्ध रूप में लिखने की क्षमता का विकास करना। (10) वाचन में गति एवं शुद्धता बनाए रखना। (11) पाठ्यक्रम के विषयों को समझना तथा उनसे सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर देने की योग्यता उत्पन्नकरना।

(12) किसी भी विषय पर 10-15 पंक्तियों में निबन्ध लिखने की योग्यता व क्षमता का विकास करना।

(13) छुट्टी के लिए प्रार्थना-पत्र लिखने का ज्ञान कराना।

(14) हिन्दी विषय की कविताओं को कंठस्थ करके सुनाना तथा लिखने का अभ्यास कराना। कहानियों को याद करना तथा सार रूप में उत्तर-पुस्तिका में लिखने की क्षमता विकसित करना।

(15) हिन्दी के प्रमुख कवियों, लेखकों का परिचय देना। (16) चरित्र एवं नैतिकता की शिक्षा देना।

माध्यमिक स्तर पर हिन्दी शिक्षण की स्थिति (1) प्राथमिक स्तर की अशुद्धियों में संशोधन करना।

(2) बालकों की मानसिक क्षमता में वृद्धि करना। (3) बालकों के शब्द तथा वाक्य के उच्चारण में शुद्धता लाना।

(4) उनकी वर्तनी में अशुद्धियों को दूर करना।(5) व्याकरण का अध्यापन करना।

(6) बालकों के शब्द भण्डार में वृद्धि करना।(7) विद्यार्थियों के विचारों में स्पष्टता तथा क्रमबद्धता लाना।

(8) बालकों में तर्क-क्षमता का विकास। (9) वाचन की गति बढ़ाना तथा शुद्धता के साथ पढ़ने की आदत का विकास करना।

(10) विषय को पढ़ने में रुचि का विकास करना।

(11) अपने भावों-विचारों को मौखिक एवं लिखित रूप में प्रकट करने की क्षमता बढ़ाना।

(12) कविता, कहानी, लेखों आदि को यति, गति, आरोह, अवरोह के साथ पढ़ने की आदत विकसित करना।

(13) साहित्य पढ़कर रसानुभूति कराना तथा सौन्दर्य की अनुभूति कराना।

(14) बच्चों में पढ़ने की आदत का विकास। पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्तभी हिन्दी साहित्य पढ़ने को प्रेरित करना।

(15) नैतिक निर्माण की ओर अग्रसर करना।

उच्च माध्यमिक स्तर पर हिन्दी शिक्षण की स्थिति -(1) बालकों में हिन्दी साहित्य की समझ विकसित करना।

(2) बालकों को साहित्य के पढ़ने की दिशा में प्रेरित करना। (3) शब्द भण्डार में वृद्धि करना।

(4) व्याकरण के नियमों की जानकारी, परिभाषा तथा उदाहरण लिखने का ज्ञान अर्जन करना।

(5) हिन्दी भाषा की जानकारी देना तथा भाषा विज्ञान से परिचय कराना।

(6) काव्य के गुण, दोषों, रस, छन्द तथा अलंकार बताइए। (7) साहित्य के भेदों में अन्तर करने की क्षमता का विकास करना।

(8) प्रभावी भाषा में अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास।(9) मौखिक तथा लिखित प्रस्तुतीकरण में प्रभावशीलता लाना। (10) विद्यार्थियों में साहित्यिक प्रवृत्तियाँ विकसित करना।

(11) उनमें कविताएँ, कहानियाँ लिखने की क्षमता का विकास करना। (12) वाद-विवाद तथा भाषण हेतु उनमें वक्तृत्व कला-कौशल का विकासकरना।

(13) स्वाध्याय की आदत का विकास । अन्य साहित्यकारों की कृतियों को पढ़ना तथा विवेचनकरने की आदत का विकास करना।

(14) मौलिक चिन्तन जागृत करना। (15) भाषा शुद्ध बोलने एवं लिखने की कुशलता बढ़ाना।

उच्चारणअशुद्धियया

वाचन एवं लेखन की शिक्षा द्वारा अभिव्यक्ति की क्षमताओं का विकास किय जाता है। अभिव्यक्ति की क्षमतायें वाचन तथा लेखन की शुद्धता पर निर्भर होती हैं। वाचन की प्रक्रिया में शुद्ध उच्चारण तथा लेखन में शुद्ध वर्तनी का विशेष महत्व है। शुद्ध उच्चारण की क्षमताओं से वाचन की योग्यता का विकास होता है और शुद्ध वर्तनी से लेखन की क्षमता एवं कौशल का विकास होता है। वाचन क्षमताओं के निदान से उच्चारण की अशुद्धियों का पता चलता है और लेखन का आकलन करने से वर्तनी की अशुद्धियों का बोध होता है। इसके लिए भाषा-शिक्षकों को निदान के आधार पर सुधारात्मक शिक्षण का आयोजन करना होता है।

उच्चारण की शिक्षा -

हिन्दी भाषा का क्षेत्र अधिक व्यापक है। कई प्रदेशों मातृभाषा हिन्दी है परन्तु वाचन में हिन्दी का ही उपयोग करते हैं परन्तु उच्चारण में स्थानीय प्रभाव अधिक है। यहाँ उत्तर प्रदेश जैसे विशाल प्रदेश में भी हिन्दी के उच्चारण में अधिक अन्तर है। हिन्दी भाषा क्षेत्र मध्य प्रदेश, राजस्थान का भी क्षेत्र अधिक बड़ा है यहाँ भी उच्चारण में स्थानीय प्रभाव है। स और श के उच्चारण में अन्तर नहीं कर पाते हैं। बृज तथा अवधी में 'श' का उच्चारण अथवा ध्वनि नहीं है। हिन्दी की शुद्ध वाचन को खड़ी हिन्दी कहते

हैं। खड़ी हिन्दी को सभी हिन्दी क्षेत्र समझ लेते हैं परन्तु स्थानीय भाषा को समझने में कठिनाई होती है।

उच्चारण का महत्व -

भाषा में उच्चारण का महत्व सबसे अधिक होता है यहाँ इसका विवेचन किया गया है:-

"भाषा के अन्तर्गत व्याकरण से कहीं अधिक महत्व शुद्ध उच्चारण का है। उच्चारण क्रिया वाक्य व्याकरण-असम्मत होने पर भी अर्थ प्रदान करता है, परन्तु व्याकरणसम्मत वाक्य अशुद्ध उच्चारण करने पर अपूर्ण माना जाता है क्योंकि श्रोता उसे समझ नहीं पाते अथवा प्रयत्न करके उसका अर्थ निकाल पाते हैं।"

(1) शुद्ध उच्चारण ही भाषा के ज्ञान का आवश्यक अंग है। भाषा में सम्प्रेषण का प्रमुखमाध्यम है।

(2) बालक जैसे ही बोलना सीखता है अनुकरण से अपनी मातृभाषा सीखता है परन्तु उस पर स्थानीय प्रभाव होता है।

(3) भाषा की शिक्षा में उच्चारण से अथवा अक्षरों व शब्दों की ध्वनियों का ही विशेष महत्व होता है।

(4) शुद्ध उच्चारण से सम्प्रेषण में बोधगम्यता आती है।

(5) अशुद्ध उच्चारण से भाव भंगिमा भी होती है तथा सुनने में भी अच्छा नहीं लगता है। सम्प्रेषण भी नहीं होता है।

(6)शुद्ध उच्चारण से भाषा परिष्कृत होती है

शुद्ध शुद्ध उच्चारण का अर्थ

एक भाषा बोलने वालों में भी उच्चारण भेद पाया जाता है। यह भेद क्षेत्रीय तथा भौगोलिक भिन्नता के कारण होता है। जिस भाषा का क्षेत्र जितना व्यापक होता है उतनी ही अधिक उच्चारण भिन्नता होती है। हिन्दी के लिए यह तथ्य चरितार्थ होता है। शुद्ध उच्चारण का अर्थ मानक उच्चारण से होता है। क्षेत्रीय उच्चारण सम्प्रेषण की दृष्टि से प्रयोग करते हैं परन्तु भाषा तथा लेखन की दृष्टि शुद्ध नहीं मानते हैं। हिन्दी की 'खड़ी बोली' को शुद्ध उच्चारण या शुद्ध मानक कहते हैं। सर्वमान्य उच्चारण का मानक उच्चारण या शुद्ध उच्चारण मानते हैं।उच्चारण का अर्थ केवल ध्वनियों अथवा वर्णों के उच्चारण से नहीं होता है अपितु शब्दों तथा वाक्यों के स्तर पर भी शुद्ध उच्चारण से होता है। शब्दों के उच्चारण की अशुद्धियों से भाव भंगिमा हो जाती है। शुद्ध उच्चारण में ध्वनियों की अनुतान, सुर, लय, यति, गति का ध्यान रखते हुए भाषा आ उपयोग करते हैं तभी शुद्ध उच्चारण की पहिचान होती है। रागात्मक अभिलक्षणों का शिक्षण देना अति आवश्यक होता है।

उच्चारण के अनुसार भेद-उच्चारण के अनुसार हिन्दी ध्वनियों में भेद पाँच प्रकार का होता है:-

(1) स्वरकृत भेद-(उच्च स्वर से अथवा मन्द स्वर से)।

(2) कालकृत भेद-सामान्य के अनुसार उच्चारण में अन्तर आता है। (3) स्थानकृत भेद-मुख अवयवों की क्रियाशीलता के अनुसार अन्तर होता है। (4) आभ्यन्तर प्रयत्न कृत भेद-मुख अवयवों के साथ जीभ की क्रियाशीलता के अनुसार भेद करते हैं।

(5) बाह्य प्रयत्न भेद-वर्ण में श्वास की क्रियाशीलता के आधार पर भेद करते हैं। शरीर के जो अवयव अथवा अंग बोलने में प्रयुक्तहोते हैं उन्हें उच्चारण अवयव कहा जाता है। उन्हें वाक्-यन्त्र, ध्वनि यन्त्र, वागिन्द्रियाँ आदि की संज्ञा भी दी जाती है। इन

अवयवों की सहायता से मनुष्य अनेक ध्वनियों का उच्चारण करता है। मुख के अवयव-कण्ठ, तालु, दन्त, ओष्ठ, जीभ, श्वास की प्रक्रिया, कौआ नासिका आदि प्रमुख हैं। श्वास नली द्वारा वायु बाहर निकलती है और अवरोध भी श्वास नली में होता है, तब 'स्वरों का उच्चारण होता है। जब किसी अन्य स्थान पर वायु का अवरोध होता है तब 'व्यंजनों का उच्चारण होता है।

व्यंजनों के पाँच वर्ग-क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, त वर्ग और ष वर्ग होते हैं। प्रत्येक वर्ग के प्रथम दो वर्ण-क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ कठारे, तीसरे तथा चौथे वर्ण कोमल तथा प्रत्येक वर्ग का अंतिम आधार अनुनासिक कहे जाते हैं। अनुनासिक वर्ण अल्पप्राण कहे जाते हैं। जिन ध्वनियों में कम्पन नहीं होता अघोष तथा जिनमें कम्पन होता है सघोष कहते हैं।

अशुद्ध उच्चारण के कारण

भाषा में अशुद्ध उच्चारण के अनेक कारण होते हैं । यहाँ पर कुछ प्रमुख कारणों का उल्लेख किया गया है:-

(1) भाषा के उच्चारण में स्थानीय व भौगोलिक प्रभाव होता है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में उच्चारण में अधिक अन्तर है यहाँ तक कि समझना भी कठिन होता है। पहाड़ी क्षेत्र के लोगों का उच्चारण मैदानी क्षेत्र के उच्चारण से बिल्कुल ही भिन्न होता है।

(2) यदि शिक्षक का उच्चारण शुद्ध नहीं है तब बालक भी उसका अनुकरण करते हैं औरउच्चारण अशुद्ध होता है।

(3) बालक की वाचन के दोष या उसकी असमर्थता भी अशुद्ध उच्चारण का कारण होती है। हकलाने के कारण शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं।

(4) बालकों की हीनभावना या ग्रन्थियों के कारण भी उच्चारण करते हैं।

(5) कुछ शिक्षकों का व्यवहार छात्रों के प्रति कठोर होता है जिससे अधिक भयभीत रहते हैं। भय के कारण बालक शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं। (6) प्रान्तीय भाषाओं के प्रभाव के कारण भी उच्चारण अशुद्ध होता है।

(7) कुछ छात्र अधिक शर्मीले होते हैं वे संकोचवश भी शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं। उनके वाचन में अपराध हो जाता है। (8) जब छात्र किसी विशेष शब्द के उच्चारण के प्रति सचेष्ट हो जाता है तब भी शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं।

(9) पुस्तकों के मुद्रण में अशुद्धियाँ होती हैं उनका छात्र अध्ययन करता है। इस कारण भी उच्चारण अशुद्ध हो जाता है।

(10) अज्ञानता के कारण उच्चारण दोष आ जाता है। उन्हें उच्चारण को सुनने का अवसर ही नहीं मिलता, जिससे उन्हें शुद्ध अनुकरण कर सकते। (11) हिन्दी के कुछ शब्दों में अक्षर के अनुरूप ध्वनि नहीं होती है। शुद्ध उच्चारण में ध्वनि बदल जाती है। जैसे स्टेशन के-'स्टेशन स्कूल 'स्कूल' उच्चारण किया जाता है। इसी प्रकार 'स्पीकर-इसपीकर परन्तु ध्वनि के अनुसार 'सेंटेंस' भी करते हैं, 'इसपीकर' भी कहते हैं। गृह को ग्रह कहने की अशुद्धि करते हैं।

(12) क्षेत्रीय भाषाओं पंजाबी, बंगाली आदि के शब्दों के उच्चारण के प्रभाव के कारण हिन्दी भाषा में उच्चारण का दोष आता है। पंजाबी भाषा में दृश्य करके लिखा जाता है और बंगाली में ओकारान्त करके बोला जाता है। इस सामान्य अशुद्ध उच्चारण के कारणों के अतिरिक्तव्यक्तिगत कारण भी होते हैं। पारिवारिक परिस्थितियाँ भी उच्चारण को प्रभावित करती हैं। माँ बंगाली है और पिता पंजाबी है ऐसी स्थिति में बालक उच्चारण के सम्बन्ध में अपने को सुनिश्चित नहीं कर पाता है। अशुद्ध उच्चारण के कारणों का संक्षिप्त रूप में गिना सकते हैं:-

(1) शिक्षक द्वारा अशुद्ध उच्चारण, (2) मनोवैज्ञानिक कारण, (3) प्रयत्न साधन, (4) असावधानी, (5) दुराभ्यास, (6)

सामाजिक प्रभाव, (7) शिक्षण का अभाव, (8) अज्ञानता के कारण, (9) ध्वनि यन्त्र में दोष होने के कारण, (10) बोली का प्रभाव आदि।

अशुद्ध उच्चारण के प्रकार

अशुद्ध उच्चारण के प्रकारों का विभाजन यहाँ पर दिया गया है:-

1. वर्णमाला के उच्चारण में क, ख, ग, घ को कै, खै, गै, घै उच्चारण करते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इसी प्रकार से उच्चारण करते हैं।

2.स्वर लोप जैसे एकादशा को एकदशा बोलते हैं। .शब्द के अन्त में लिखते 'इ' और बोलते भी' हैं। इसी प्रकार अन्त में लिखते 'उ' और बोलते ऊ' है। मुनि को मुनी तथा मनु को मनू बोलते हैं।

4.वरागमन का दोष-'इस्कूल', इस्टेशन आदि बोलते हैं। 5.स्वरभक्तिका दोष-श्री को सिरी तथा प्रताप को परताप बोलते हैं।

हिन्दी में उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियाँ अनेक हैं सभी का उल्लेख करना सम्भव नहीं है। यह अशुद्धियाँ केवल उदाहरण मात्र ही हैं।

नैदानिक परीक्षण एवं उपचारी शिक्षण-उपचारात्मक शिक्षण हेतु निदानात्मक परीक्षण की आवश्यकता होती है। बालकों के उच्चारण की अशुद्धियों के विशेष स्थल की पहचान और कारणों का पता चला जाता है।

(1) बालक विशेष किसी विशेष ध्वनि का उच्चारण नहीं कर पाता आदत ही पड़ गई है। जैसे-क को कै और स को श बोलता है। (2) स्थानीय प्रभाव के कारण अशुद्ध उच्चारण करता है।

है अथवा अशुद्ध उच्चारण की

(3) ध्वनि लोप, ध्वनि विकृति, ध्वनि स्थानापन्न आदि दोषों का पता लगाकर उनके कारणों की खोज की जाती है तभी शुद्ध उच्चारण हेतु उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जाती है।

(4) मुख अवयवों के दोष, श्रवण दोष आदि के कारण उच्चारण का दोष भी होता है। इसमें विशिष्ट-शिक्षा' के कार्यक्रमों का उपयोग किया जाता है।

(5) निदानात्मक परीक्षण के निर्माण में प्रत्येक कठिनाई हेतु अलग-अलग परीक्षों का निर्माण करना चाहिए। कारणों को जानने का भी उसमें आधार बनाया जाए। इसमें परीक्षण परिस्थितियों को सीखने के क्रम में, सरल से कठिन की ओर व्यवस्थित किया जाए। (6) निदानात्मक परीक्षण के आधार पर अशुद्धियों तथा उनके कारणों का पता लगाने के बाद ही उपचारात्मक शिक्षण का आयोजन किया जाए। शुद्ध उच्चारण का अभ्यास तथा आदत का विकास किया जाए। सीखने के शिक्षण क्रम को अपनाया जाए। उपचारात्मक शिक्षण में प्रोत्साहन तथा सहनुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

अशुद्ध उच्चारण में सुधार हेतु विधियाँ

शिक्षण विधियों को प्रयुक्तकरने के लिए यह आवश्यक है कि अशुद्धियों के प्रकार तथा कारणों का निदान किया जाए। निदानात्मक परीक्षण दिया जाता है जिससे कारणों को सर्वप्रथम ज्ञात किया जाता है कि किन कारणों से छात्र बोलने अर्थात् वाचन में अशुद्धियाँ करते हैं। यह अशुद्धियाँ सामूहिक तथा व्यक्तिगत दोनों प्रकार की होती हैं। एक ही शब्द का अधिकांश छात्र अशुद्ध उच्चारण करते हैं तब सामूहिक त्रुटि होती है। जब प्रत्येक छात्र अलग अलग शब्दों का अशुद्ध उच्चारण करते हैं तब

व्यक्तिगत त्रुटि कहते हैं। अशुद्ध उच्चारण तथा उनके कारणों के आधार पर शिक्षण विधि का चयन किया जाता है इसलिए इसे उपचारात्मक शिक्षण विधि कहते हैं। किसी सामान्य शिक्षण विधि का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। उपचारात्मक विधियाँ मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं

(1) परम्परागत उपचारी शिक्षण विधियाँ, तथा (2) वैज्ञानिक उपचारी शिक्षण विधियाँ।

(1) परम्परागत उपचारी शिक्षण विधियाँ-भाषा शिक्षण के समय अनुकरण वाचन से उच्चारण की बुद्धि का पता चल जाता है परन्तु कारक का बोध नहीं हो पाता है। परन्तु शिक्षक को सचेष्ट रहना चाहिए। शुद्ध शब्द का आदर्श वाचन दुहराया जाए और छात्र को अनुकरण तथा अभ्यास कराया जाये, फिर भी शुद्ध उच्चारण में सुधार नहीं होता है। ऐसी स्थिति में सामूहिक अनुकरण का अभ्यास कराया जाय। अधिकांश छात्र सामूहिक अभ्यास में शुद्ध उच्चारण करने लगते हैं। सामूहिक अनुकरण अभ्यास की विधि अधिक प्रभावशाली होती है। यदि बालक सामूहिक अभ्यास से भी शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाता है तब वाचन सम्बन्धी शारीरिक द्वेष के कारण उसकी असमर्थता है । इसके लिए डॉक्टरी परीक्षण तथा डॉक्टर की सहायता लेनी चाहिए। क्षेत्रीय प्रभाव, स्थानीय प्रभाव से भी उच्चारण दोषपूर्ण होता है। इसका उपचार अभ्यास द्वारा किया जाता है। उच्चारण अभ्यास में वर्णों के रूपों का अभ्यास भी सहायक होता है, जैसे क, का, कि, की, कु, कू, के के, को, कौ, कं कः। आदि। हकलाने वाले बालकों में आत्म विश्वास पैदा करना चाहिए। उसके लिए शिक्षक को छात्र का विशेष ध्यान रखना होता है। शब्दों का उच्चारण खण्ड करके अभ्यास कराया जाय जैसे-प्रारम्भिक प्रारम्भिक, आरम्भ-आरम्भिक आदि । शब्दों को लय में वाचन करने से भी स्वाभाविक रूप में शुद्ध उच्चारण कर जाता है। सचेष्ट होने से भी त्रुटि होती है। उपचार की क्रिया में शिक्षक को अधिक सूझ-बूझ से कार्य करना होता है। यदि अशुद्धि करने पर छात्र को डॉट दिया जाए तब उच्चारण में सुधार नहीं किया जा सकता है। शिक्षक को धैर्य से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से अभ्यास कराने से सुधार की सम्भावना अधिक होती है।

(2) मनोवैज्ञानिक उपचारी शिक्षण विधि-शुद्ध उच्चारण हेतु छात्रों को भाषा विज्ञान का अध्ययन कराया जाए, इसके लिए ध्वनियों का ज्ञान दिया जाए जिससे मुख के विभिन्न अवयवों एवं उच्चारण व ध्वनियों का बोध होता है। शिक्षक को भी इन अवयवों तथा ध्वनि के लिए उच्चारण में उनकी भागीदारी का बोध होना चाहिए तभी छात्रों से शुद्ध उच्चारण कराने में सफल हो सकता है। उच्चारण का सीधा सम्बन्ध मुख के अवयवों से होता है। इसलिए इसे भाषा विज्ञान कहते हैं। वाचन तथा लेखन का सम्बन्ध शारीरिक अंगों से अधिक होता है।

शुद्ध उच्चारण के लिए शिक्षा तकनीकी के अन्तर्गत "भाषा प्रयोगशाला' का निर्माण किया गया है। इसके प्रयोग से शुद्ध-उच्चारण का अभ्यास कराया जाता है। इस विधि में छात्र सचेष्ट नहीं होता क्योंकि शिक्षक नहीं दिखाई देता है। अपने बूथ पर श्रव्य यंत्र से उच्चारण करता है। शिक्षक आदर्श वाचन करता है। भाषा प्रयोगशाला में उच्चारण या ध्वनियाँ ही सुनाई देती हैं। यह सबसे अधिक प्रभावशाली साधन है।

छात्रों के मन में भय, संकोच, हीन भावना तथा हीन ग्रन्थियाँ आदि के कारण वाचन की अशुद्धियाँ करते हैं। मनोवैज्ञानिक व्यवहार तथा परामर्श की प्रविधियों से आश्वासनों, प्रभावपूर्ण प्रेरकों तथा प्रोत्साहन से हीन भावनाओं का भय का निराकरण किया जा सकता है। शुद्ध उच्चारण में भी सुधार हो जाता है। उच्चारण की शुद्धता पर अक्षरों की शुद्धता पूर्णतया निर्भर होती है। शिक्षक को शुद्ध उच्चारण में अक्षरों की शुद्धता भी सहायक हो सकती है। शिक्षक अपने शिक्षण अनुभवों के आधार पर भी उच्चारण के सुधार हेतु प्रविधियों तथा अनुभवों का प्रयोग अधिक प्रभावशाली ढंग से कर सकता है। अशुद्ध उच्चारण की समस्या व्यक्तिगत अधिक होती है और कारण भी व्यक्तिगत होते हैं। इसलिए मनोवैज्ञानिक प्रविधियों का उपयोग ही उत्तम तथा प्रभावशाली होता है। अभ्यास की क्रिया का उपयोग सभी विधियों एवं प्रविधियों में किया जाता है।

उच्चारण सम्बन्धी नियम :-

शिक्षक को उच्चारण सम्बन्धी नियमों का भी बोध होना चाहिए। भाषा-विज्ञान में इसका विशद् वर्णन किया जाता है। यहाँ पर कुछ नियमों का उल्लेख किया गया है :-

1. हिन्दी वर्णमाला का समुचित ज्ञान का होना।

2. ध्वनि, तत्व का बोध होना, मुख के अवयवों व अंगों का उच्चारण से सम्बन्ध का ज्ञान होना। 3. विशेष कठिन ध्वनियों का अन्तर समझना तथा मुख अवयवों की क्रिया सम्बन्धित करने का ज्ञान होना।

4. कठिन शब्दोच्चारण का अभ्यास कराना। अभ्यास की क्रिया अधिक उपयोगी है।

5. शब्द विश्लेषण विधि का प्रयोग करना अर्थात् खण्डों में उच्चारण कराना।

6. आदर्श अनुकरण विधि का प्रयोग करना। 7. ईकार-ऊकार सम्बन्धी अशुद्धियों का बोध कराना।

8. शुद्ध उच्चारण के प्रति शिक्षक की सतर्कता होना। 9. सामूहिक तथा व्यक्तिगत धार की आवश्यकता को ध्यान देना।

10. स्वर शक्ति स्वर लोप, स्वरागम सम्बन्धी अशुद्धियों का ज्ञान देना।

11. स्वराघात, सुस्वरता, बल, विराम, उतार-चढ़ाव, आवृत्ति तथा गति पर ध्यान देना। 12. अशुद्ध वर्ण विपर्यय या शब्दांश विपर्यक का बोध करना।

13. उच्चारण प्रतियोगिताओं का आयोजन करना। 14. उच्चारण सम्बन्धी मौखिक परीक्षाओं का आयोजन करना।

15. वाद विवाद, संभाषण, संवाद आदि प्रतियोगिताओं की व्यवस्था करना । उच्चारण सम्बन्धी नियमों का विशद् क्षेत्र भाषा-विज्ञान का है।

अशुद्ध उच्चारण के सुधार हेतु सुझाव:-

छात्रों के शुद्ध उच्चारण कराने हेतु शिक्षक के लिए मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं:-

(1) छात्रों को शुद्ध उच्चारण का महत्व बतलाकर उनमें शुद्ध उच्चारण की आकांक्षा जागृत की जाए तथा उन्हें प्रशिक्षण के साथ प्रोत्साहित भी किया जाए।

(2) सामूहिक उच्चारण तथा अभ्यास को अधिक महत्व देना चाहिए। (3) अशुद्ध उच्चारण करने वाले छात्रों से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। उनका उपहास नहीं करना चाहिए।

(4) अशुद्ध उच्चारण का सर्वप्रथम निदान किया जाए जिससे कारण का बोध हो, समुचित प्रविधि का प्रयोग किया जाये।

(5) शिक्षण को भाषा-विज्ञान के वाचन तथा उच्चारण का पर्याप्त बोध होना चाहिए क्योंकि भाषा को विज्ञान मानते हैं।

(6) यदि सुविधाएँ उपलब्ध हों तब तकनीकी माध्यमों तथा साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। भाषा-प्रयोगशाला का उपयोग किया जाता है।

(7) शिक्षक को उपचारी शिक्षण में धैर्य से कार्य लेना चाहिए और छात्रों से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। (8) उच्चारण सम्बन्धी विविध प्रकार की प्रतियोगिताओं के आयोजन करने से भी आकांक्षा स्तर ऊँचा होता है।

वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ

भाषागत शुद्धता दोनों ही प्रकार-उच्चारण तथा वर्तनी से आवश्यक होती है। वर्तनी की शुद्धता भाषागत शुद्धता का अनिवार्य गुण है। इसके अभाव में भाषा शक्तिक्षीण हो जाती है। वर्तनी का क्षेत्र अधिक व्यापक है। वर्तनी की शिक्षा प्राथमिक स्तर से ही आरम्भ कर दी जाती है और उच्च माध्यमिक स्तर तक की जाती है। शुद्ध वर्तनी का महत्व सभी स्तरों पर रहता है। भारत में सुन्दर तथा सुडौल लेखन का महत्व अतीत से रहा है, साथ ही लेखन में शुद्ध वर्तनी का विशेष महत्व है। भारत में लिपि को एक धार्मिक महत्व प्राप्त है। भाषा में वर्तनी की अशुद्धियों को धार्मिक दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता है। जिस प्रकार मन्त्रों के अशुद्ध उच्चारण से कुप्रभाव की आशंका रहती है उसी प्रकार वर्तनी की अशुद्धियाँ भी कुप्रभाव डालती हैं। भाषा का उद्देश्य भी पूरा नहीं होता है।

शुद्ध वर्तनी का अर्थ

हिन्दी भाषा बोलने तथा लिखने में अन्तर पाया जाता है, सका कारण भौगोलिक परिस्थितियाँ होती हैं क्योंकि अक्षरों तथा शब्दों के उच्चारण में अन्तर आता है यही भेद वर्तनी में हो जाता है। उच्चारण तथा वर्तनी परस्पर पूरक होती हैं और एक-दूसरे को प्रभावित भी करती हैं। शुद्ध वर्तनी का अर्थ मानक-वर्तनी से होता है। क्षेत्रीय वर्तनी का सम्प्रेषण की दृष्टि से उपयोग करते हैं, परन्तु भाषा की दृष्टि से शुद्ध वर्तनी नहीं मानते हैं। सर्वमान्य वर्तनी तथा भाषा की दृष्टि से शुद्ध वर्तनी को मानक हिंदी कहा जाता है ।

वर्तनी का अर्थ अक्षरों का सुडौल तथा सुन्दर लिखने से नहीं होता है अपितु शब्दों में निहित अक्षरों या वर्णों को शुद्ध रूप से तथा सही क्रम में लिखा जाए। शुद्ध वर्तनी भाषा का एक शुद्ध रूप प्रस्तुत करती है। इसलिए भाषा शिक्षा का वर्तनी एक महत्वपूर्ण अंग है। शुद्ध वर्तनी का प्रभाव, गठन, उच्चारण तथा रचनागत अन्य रूपों पर पड़ता है।

शुद्ध वर्तनी की आवश्यकता एवं महत्व

(1) भाषा की शुद्धता वर्तनी पर ही आधारित होती है क्योंकि भाषा का शुद्ध रूप वर्तनी के माध्यम

(2) भाषा सम्बन्धी कौशलों का विकास शुद्ध वर्तनी से सम्भव है। शुद्ध उच्चारण, पढ़ने तथा से ही प्रस्तुत किया जा सकता है।अध्ययन में शुद्धता, सुनने में शुद्धता का विकास किया जाता है।

(3) भाषा शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति शुद्ध वर्तनी से ही की जा सकती है।

(4) अन्य विषयों की पाठ्यवस्तु का शुद्ध ज्ञान भी शुद्ध वर्तनी से सम्भव हो पाता है। (5) हिन्दी रचनाओं का प्रस्तुतीकरण भी शुद्ध वर्तनी से होता है। (6) भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषण में वर्तनी का अधिक महत्व है। (7) यज्ञों में मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण तभी सम्भव हो पाते हैं जब मन्त्रों की वर्तनी शुद्ध लिखी गई हो।

वर्तनी-शिक्षण के उद्देश्य

वर्तनी-शिक्षण के मुख्य चार उद्देश्य हैं :-

(1) शुद्ध वर्तनी का ज्ञान-पाठ्य-पुस्तकों में प्रयुक्तनये शब्दों का ज्ञान देना, पाठ्य-पुस्तकों के

शब्दों का अभ्यास कराना, सन्धि, समास, प्रत्यय, लिंग, वचन आदि का ज्ञान देना, हिन्दी लिपिक का शुद्ध ज्ञान प्रदान करना।

(2) शुद्ध वर्तनी लिखने की क्षमता एवं कौशल का विकास करना-कक्षागत कार्यों तथा गृहकार्यों के रूप लिखित अर्थ में वर्तनी की अशुद्धियाँ न कर इसका अभ्यास कराया जाता है। स्वयं की लिखित रचनाओं में शुद्ध वर्तनी का प्रयोग करना। (3) वर्तनी की अशुद्धियों का निदान करके उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करना, निदानात्मक परीक्षणों के आधार पर शिक्षक वर्तनी अशुद्धियों की पहचान करके उनके कारणों का भी पता लगाना और उनका उपचार करना मुख्य उद्देश्य है। वर्तनी की अशुद्धियों का निराकरण करना मुख्य उद्देश्य है। (4) वर्तनी सम्बन्धी कौशल एवं क्षमताओं का विकास करना-शब्दों की वर्तनी की पहचान करना, शुद्ध तथा अशुद्ध में भेद करना, वर्तनीगत परिवर्तन को समझना, शुद्ध लेखन में शब्दों के उच्चारण के अनुकूल वर्तनी लिखना। दूसरे के द्वारा लिखे शब्दों की वर्तनी का अनुकरण करना, स्वयं की रचनाओं, पत्र-प्रपत्रों में शुद्ध वर्तनी लिखना। अशुद्ध उच्चारण किए गए शब्दों की शुद्ध वर्तनी लिखना।

वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों के कारण

हिन्दी भाषा के अन्तर्गत वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों के अनेक कारण होते हैं, उन सभी त्रुटियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार कर सकते हैं:-

1. हिन्दी लिपि अथवा वर्तनी का शुद्ध ज्ञान न होना।

2. अशुद्ध उच्चारण को सुनने या बोलने अथवा एकरूपता का अभाव होना जैसा उच्चारण हो उसी के अनुरूप लिखा भी जाए।

3. व्याकरण के रूपों का ज्ञान न होना। 4. कुछ हिन्दी शब्दों को वर्तनीगत सर्वमान्य एकरूपता का न होना।

5. क्षेत्रीय भाषा के प्रभाव के कारण अशुद्धियाँ होती हैं।

6. अक्षरों, शब्दों, मात्राओं का अनुस्वार का सही ज्ञान न होना। 7. लिखते समय मनोस्थिति का सामान्य न होने से भी अशुद्धियाँ होती हैं।

8. अधिक समय तक कार्य करना और थकावट होने से भी अशुद्धियाँ होती हैं।

9. शब्दों अथवा लेखन अभ्यास के अभाव के कारण भी अशुद्धियाँ होती हैं।

10. पुस्तकों के मुद्रण की अशुद्धियाँ भी प्रभावित करती हैं। शिक्षक भी श्यामपट पर अशुद्ध लिख देते हैं।

11. लिखने में शीघ्रता करने से भी अशुद्धियाँ होती हैं।

अशुद्धियों के प्रकार

वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों के अनेक प्रकार हैं परंतु प्रमुख अशुद्धियों का यहाँ उल्लेख किया गया है:-

(1) सामान्य लिपि सम्बन्धी अशुद्धियाँ-ब के स्थान पर व, श के स्थान पर स, ई के स्थान पर इ, तथा पृ, गृ के स्थान पर प्र, ग्र लिखना आदि हैं।

2) पंचम वर्ण सम्बन्धी अशुद्धियाँ-वर्ण के वर्गों के अनुसार अनुस्वार का प्रयोग किया जाए, जैसे खंड-खण्ड, सुंदर-सुन्दर, संबंध-सम्बन्ध, पंचम-पञ्चम, अंक-अन्क आदि का प्रयोग करते हैं। (3)अनुस्वार सम्बन्धी अशुद्धियाँ-अनुस्वार को वर्ण पर लगाने के बजाय, बाद के वर्ण पर लगाना, जैसे-अंकित-अकिंत, उन्होने उन्होंने।

(4)अक्षरों या वर्णों की अशुद्धियाँ- जैसे-नखलऊ-लखनऊ, ब्राह्मण-ब्राह्मण, भरम-भर्म, दुख-दुःख, उत्तरी-उत्तीय, राजकी-राजकीय आदि।

(5) मात्राओं की अशुद्धियाँ-व्यवहारिक-व्यावहारिक, आधीन-अधीन, रचियता-रचयिता, दीक्षत-दीक्षित। (6) लिंग तथा वचन सम्बन्धी अशुद्धियाँ-जैसे-अनेकों-अनेक (अनेक बहुवचन है) विद्वान महिला-विदुषी महिला,

(7) सन्धि व समास अशुद्धियाँ-नवनीत-नवनीत। (8) प्रत्यय व उपसर्ग सम्बन्धी अशुद्धियाँ।

(9)संयुक्त व्यंजनों की ध्वनियों के कारण अशुद्धियाँ होती हैं जब स्वर रहित व्यंजन लिखे जाते हैं।।

(10) संयुक्त शब्दों के प्रायः अशुद्धियाँ होती हैं। इनका स्पष्ट ज्ञान-प्रयोग अभ्यास कराना चाहिए।

वर्तनी की अशुद्धियों के लिए उपाय

वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों के सुधार हेतु दो प्रकार के कार्यों का उपयोग किया जाता है:-

(1) निरोधात्मक उपाय तथा (2) सुधारात्मक उपाय है।

(1) निरोधात्मक उपाय (पूर्व सावधानी)-इससे तात्पर्य उन क्रियाओं तथा शिक्षण प्रविधियों से है जिनमें अशुद्ध वर्तनी को रोका जा सकता है। इसे पूर्व सावधानी भी कह सकते हैं। शिक्षण के समय ही शिक्षक छात्रों को सचेत करे कि छात्र वर्तनी में किस प्रकार की त्रुटि करते हैं। उदाहरण से भी स्पष्ट कर दें। इस सम्बन्ध में निम्नांकित क्रियायें की जानी चाहिए

(अ) गद्य पाठ का शिक्षण करते समय वर्तनी की शुद्धता पर बल दिया जाए। (ब) व्याकरण के नियमित शिक्षण के समय वर्तनी सम्बन्धी परिवर्तन को स्पष्ट किया जाए।

(स) लिखित कार्य के संशोधन के समय त्रुटियों का सुधार तथा छात्रों से अभ्यास कराया जाए। (द) वर्तनी अशुद्धियों के लिए अभ्यास कराया जाए, लिखित कार्य पर अधिक बल दिया जाए। अधिक लिखने से स्मरण भी रहता है।

(य) सावधानी से पढ़ने तथा लिखने पर बल देना चाहिए और शब्दों की वर्तनी पर भी ध्यान दिया जाए।

(र) छात्रों को वर्तनी के शब्दकोष का प्रयोग सिखाया जाए। किसी शब्द की वर्तनी पर भ्म होने पर शब्दकोष की सहायता ली जाए।

(ल) वर्तनी सम्बन्धी पुस्तिकाओं का प्रयोग किया जाए। (व) अनुलिपि तथा श्रुतिलिपि का अभ्यास कराया जाए।

(श) खेल विधि द्वारा वर्तनी सम्बन्ध शुद्ध ज्ञान दिया जाए। (ह) वर्तनी सम्बन्धी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाए तथा वर्तनी की परीक्षा का भी आयोजन किया जाए।

(2) सुधारात्मक उपाय-इससे तात्पर्य उन क्रियाओं से है जिनसे छात्रों की वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों में उपचार अथवा सुधार किया जाता है। निरोधात्मक उपाय पूर्व सावधानी है जिससे छात्र वर्तनी की अशुद्धि न करे जबकि सुधारात्मक उपाय में उपचार किया जाता है क्योंकि छात्र वर्तनी में अशुद्धियाँ करने लगे हैं। इसके लिए निदानात्मक परीक्षण की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के परीक्षण के वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों की पहचान होती है तथा वर्तनी की अशुद्धि सम्बन्धी कारणों को भी ज्ञात किया जाता है। बिना सही निदान के सुधार या उपचार प्रभावशाली नहीं होगा। यह प्रक्रिया वैज्ञानिक है क्योंकि इसमें कारण-प्रभाव का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। निदानात्मक परीक्षण की परिस्थितियों को सीखने के क्रम में रखा जाता है जबकि निष्पत्ति परीक्षा में कठिनाई क्रम व्यवस्थित करते हैं। अशुद्धियों का विश्लेषण करने से कारण का पता लगाया जाता है। प्रत्येक छात्र की वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ तथा उनके कारण भी अलग-अलग होते हैं। वर्तनी सम्बन्धी एक ही त्रुटि को एक छात्र असावधानी से हुई, दूसरे ने क्षेत्रीय प्रभाव के कारण की है तथा तीसरे से आदत के कारण हुई है। सभी के लिए एक उपाय नहीं होगा प्रत्येक छात्र के लिए अलग-अलग उपाय किए जायेंगे। यह सुधारात्मक शिक्षण व्यक्तिगत अधिक होता है इसलिए वैज्ञानिक साधन मनोवैज्ञानिक भी है। निरोधात्मक तथा सुधारात्मक उपाय वर्तनी की दृष्टि से सहयोग तथा पूरक हैं। अन्तर केवल अवस्था का है। एक अशुद्धि से पूर्व दूसरा अशुद्धि के बाद का उपाय है।

वर्तनी सम्बन्धी नियम

वर्तनी की अशुद्धियों को दूर करने के लिए निम्नांकित नियमों का अनुसरण करना चाहिए :-

1. हिन्दी क्रियाओं का अन्तिम अक्षर से दर्द होता है; जैसे-जाता, खाती, खेलती, लिखता आदि।

2. सहायक क्रिया है' को एक वचन में है है' किन्तु बहुवचन में हैं लिखते हैं। 3. अकारान्त शब्दों के बहुवचन ओकारान्त रूप में सदैव अनुस्वार रहता है। जैसे-पुस्तकों, किताबों, छात्रों आदि।

4. अकारान्त शब्दों के बहुवचन में "ए' आता है न कि यें जैसे छात्राएँ, कविताएँ लताएँ आदि। 5. चाहिए शब्द के अन्त में सदैव 'ए' आना चाहिए न कि 'ये'।

6. स्वर-विहीन व्यंजन हिन्दी में आधा लिखा जाता है। क्योंकि बिना स्वर के उच्चारण नहीं किया जा सकता है। इसलिए अधूरा होता है।

7. यदि आधार 'र' व्यंजन किसी पूरे अक्षर में मिलता है तब उसे अक्षर के ऊपर लगाते हैं; जैसे-कर्म, मर्म, मार्ग, धर्म से आगे वाले अक्षर पर लगाते हैं। 8. 'ऋ' स्वर किसी व्यंजन से मिलता है तब उसे अक्षर के नीचे ध्वनि से पहले वाले अक्षर में लगाते हैं; जैसे गृह, पृथ्वी, मृत्यु आदि।

9. 'र' में उ व ऊ स्व की मात्रा लगाने पर रु और रू होता है; जैसे-रूप, रुपया, गुरु आदि। 10. 'क' और 'त' के सहयोग के जब क आधा होता है जैसे-'क्त', क्तदोनों ही प्रकार से लिखा जाता है। जैसे-शक्ति भक्त या भक्तआदि। 11. 'त' में 'त' का संयोग 'त' के रूप में लिखते हैं, जैसे-पत्ती।

12. जब किसी क्रिया के अन्त में 'गे' हो तो उससे पहले 'ए' की मात्रा पर सदैव अनुस्वार लगता है। जैसे-खेलेंगे, पढ़ेंगे, लिखेंगे आदि ।

13. आदर्शवाचक क्रियाओं के अंत में 'ए' होता है न कि 'ये' जैसे-जाए, खाए, इसी प्रकार खायेगा-खाएगा, रोयेगा, रोएगा आदि।

14. सर्वनामों में विभक्ति-चिह्न साथ में लिखे जाते हैं; जैसे-मुझ को-मुझको, आप से-आपसे आदि।

15. द्वन्द्व समास के पदों के मध्य हाइफन लगाते हैं। जैसे-सीता-राम, राधा-कृष्ण, सुख-दुख आदि।

16. हिन्दी में विभक्ति चिह्न प्रतिपादक से अलग लिखे जाते हैं, जैसे-राम ने, लक्ष्मण को, भरत के लिए आदि।

17. क में र का संयोग होने पर 'श्र' लिखा जाता है। जैसे-परिश्रम, श्रम आदि। 18. जिन शब्दों में 'सा' जैसा-प्रयुक्तहो उनमें हाइफन का प्रयोग किया जाता है जैसे-तुम-सा, कमल-जैसा, मुझ-सा आदि।

19. संस्कृत के शब्दों का भी हिन्दी में प्रयोग किया जाता है उन्हें संस्कृत रूप में लिखा जाए। 20. हिन्दी में अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उन शब्दों को हिन्दी भाषा के अनुरूप ही लिखा जाए। जैसे गजल न कि गजल डाक्टर न कि डॉक्टर आदि।

वर्तनी में सावधानियाँ

लेखन में वर्तनी का विशेष महत्व है क्योंकि लिखने की शुद्धता वर्तनी पर निर्भर होती है-लेखन में शिक्षक को दोनों पक्षों पर ध्यान देना चाहिए-शब्दों व अक्षरों का सुडौल, सुन्दर तथा एकरूपता हो। एकरूपता का प्रथम प्रभाव पड़ता है और द्वितीय प्रभाव वर्तनी का होता है। लेखन में निम्नांकित सावधानियाँ रखनी चाहिए :-

1. लेखन तथा वर्तनी दोनों की शुद्धता पर ध्यान दिया जाए। 2. पढ़ने, लिखने, बोलने तथा सुनने में उच्चारण के साथ वर्तनी पर ध्यान दिया जाए। 3. वर्तनी तथा लेखन सम्बन्धी नियमों का अनुसरण किया जाए।

4. निरोधात्मक तथा सुधारात्मक उपायों को प्रयुक्त किया जाए। 5. निदानात्मक परीक्षाओं का समुचित प्रयोग किया जाए जिससे कारणों का पता लगा सके और सुधार किया जा सके।

6. वर्तनी सम्बन्धी भाषा विज्ञान का ज्ञान भी शिक्षक को होना चाहिए। 7. वर्तनी के सुधार में अभ्यास पर विशेष बल दिया जाए।

अक्षर-विन्यास की अशुद्धियों का निराकरण

अक्षर-विन्यास या वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों के निराकरण के लिए बालक और अध्यापक-दोनों को प्रयत्न करना होगा। इस सम्बन्ध में जो साधन अपनाए जा सकते हैं, वे नीचे दिए जा रहे हैं:-

1. स्वयं संशोधन विधि:-

इस विधि द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि विद्यार्थी स्वयं अपनी अशुद्धियों को जान जाए। इस दिशा में यह उपाय काम में लाए जाते हैं :-

(क) जोश का उपयोग करके, (ख) शुद्ध शब्द-सूची देखकर, (ग) अशुद्धियों का स्वतः निरीक्षण करके।

2. शुद्ध उच्चारण का अभ्यास:-

विद्यार्थियों की कई अशुद्धियाँ इस कारण भी होती हैं कि वह शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं करते। अध्यापक को बालक के शुद्ध उच्चारण की ओर विशेष ध्यान देना होगा, विशेष रूप से संयुक्त वर्णों का उच्चारण शुद्ध करने के लिए अध्यापक को यह बताना चाहिए कि कौन-सा वर्ण मुख के किस स्थान से उच्चरित किया जाता है।

3. सुलेख के अभ्यास द्वारा

सुलेख का अभ्यास कराने से भी छात्रों को वर्तनी-सम्बन्धी त्रुटियों का परिमार्जन हो जाता है और छात्रों का समय भी बच जाता है।

4. व्याकरण के नियमों का ज्ञान कराके

व्याकरण के ज्ञान के अभाव में ही वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ अधिक होती हैं। अतएव यह आवश्यक है कि बालकों के व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान को पुष्ट किया जाए। इस सम्बन्ध में व्याकरण निम्नलिखित नियमों का ज्ञान सहायक सिद्ध होगा:-

(क) बहुवचन बनाने का नियम सिखाना, (ख) क्रिया सम्बन्धी नियमों का ज्ञान कराना,

(ग) कारकों की जानकारी देना, (च) वर्णों को संयुक्त करने का ज्ञान देना,

(घ) संयोजक अव्यय के बारे में बताना, (ङ) 'र' का प्रयोग सिखाना,

(छ) उपसर्ग और प्रत्यय का ज्ञान कराना। 5. शारीरिक दोषों का उपचार

जिन बालकों की वाणी अथवा श्रवणेन्द्रिय में किसी प्रकार का दोष हो, उसका उपचार वाणी-विशेषज्ञों, मनोवैज्ञानिकों अथवा चिकित्सकों द्वारा जल्दी से जल्दी करवा लेना चाहिए।

6. अध्यापक द्वारा संशोधन:-

अध्यापक को नियमित रूप से विद्यार्थियों द्वारा किये गये कार्य का संशोधन करना चाहिए और अक्षर-विन्यास (वर्तनी) सम्बन्धी अशुद्धियों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए शब्दों के शुद्ध स्वरूप को लिखने का अभ्यास करवाना चाहिए।

7. अक्षर-विन्यास का अभ्यास:-

अक्षर-विन्यास के अभ्यास का सबसे अच्छा साधन-शब्दों को बार-बार लिखवाना। जब बालक शब्दों को लिखते हैं तो उपर्युक्त बातों को क्रियान्वित करते हैं किसी शब्द को लिखते समय बालक का रूप भी देखता जाता है। साथ ही साथ वह मन ही मन में शब्दों का उच्चारण भी करता जाता है। लिखते समय उसके हाथ की माँसपेशियाँ भी सक्रिय रहती हैं। अतएव अक्षर-विन्यास सिखाने का सबसे सुलभ साधन शब्दों को लिखवाना है। बालकों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे लिखते समय मन ही मन शब्दों का उच्चारण भी करते जाएँ।

बहुत-से विद्यालयों में अक्षर-विन्यास के अभ्यास के लिए 'श्रुतलेख (Dictation) का सहारा लिया जाता है। परन्तु यह पद्धति अब उचित नहीं समझी जाती है। श्रुतलेख के द्वारा इस बात की जाँच तो कर सकते हैं कि विद्यार्थियों का अक्षर-विन्यास कहाँ तक ठीक है, परन्तु इसके द्वारा अक्षर-विन्यास सिखाया नहीं जा सकता। श्रुतलेख के द्वारा शब्दों के श्रवण का तथा अच्छी गति से लिखने का अभ्यास ही कराया जा सकता है।

अक्षर-विन्यास सिखाने का एक अन्य साधन है-वाचन के साथ इसका सम्बन्ध स्थापित करना। ऐसा प्रायः देखा गया है कि जिन बालक तथा बालिकाओं की रुचि वाचन में होती है और जो पत्र-पत्रिकाएँ आदि पढ़ते रहते हैं वे अक्षर-विन्यास सम्बन्धी अशुद्धियाँ बहुत कम करते हैं। इनके अतिरिक्त अध्यापकों को पता होना चाहिए कि छात्रों में किस प्रकार की अक्षर-विन्यास सम्बन्धी अशुद्धियाँ पाई जाती हैं, ताकि वे पहले से ही इस सम्बन्ध में सजग रहें।

8.खेल-विधि:-

अक्षर-विन्यास या वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों को दूर करने के लिए 'खेल-विधि' का भी सहारा लिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कुछ खेलों का वर्णन नीचे की पंक्तियों में किया जा रहा है (i) अक्षर-विन्यास प्रतियोगिता-पहले कक्षा को दो समूहों में विभाजित कर लिया जाय। फिर पूछे गये शब्दों की वर्तनी, बारी-बारी से दोनों समूह बताएँ। जिस समूह की कम अशुद्धियाँ होंगी, वह विजयी समझा जायेगा। अन्त में वे बालक शब्द के शुद्ध स्वरूप को पाँच-पाँच बार लिखेंगे, जिन्होंने अक्षर-विन्यास सम्बन्धी अशुद्धियों की हैं।

(ii) श्यामपट पर एक शब्द लिन दिया जाए। बालक उसे कुछ क्षण देखें। फिर उस शब्द को ढाँक दिया जाए और बालकों को वर्तनी बताने के लिए कहा जाए। (iii) किसी शब्द को लेकर उसके अक्षरों को उलट-फेर करके श्यामपट पर लिख दिया जाए। फिर बालकों द्वारा शुद्ध शब्द की खोज कराई जाए; जैसे-'लबाक' का शुद्ध शब्द 'बालक' होगा।

(iv) बालकों से शब्दों की अन्त्याक्षरी कराई जाए।

(v) शब्दों में से किसी अक्षर को हटा दिया जाए। फिर बालकों को रिक्तस्थान की पूर्ति के लिए कहा जाय; जैसे-(i) क.....ल, (ii).....लव, (iii) पुस्तक.....। (vi) शब्द के अक्षरों के परिवर्तन से नये-नये शब्द बनाने का अभ्यास कराया जाए-'कमल से 'कलम'।

इसके लिए बालकों को शब्द-कोष का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करते रहना चाहिए।

इससे जहाँ भी उन्हें किसी शब्द के सम्बन्ध में संदेह होगा, वे उसका निवारण बड़ी सरलता से कर सकेंगे और अक्षर-विन्यास सम्बन्धी अशुद्धियों से बचे रहेंगे। जिन शब्दों का बालक अशुद्ध विन्यास करता है और अध्यापक उनको शुद्ध कर देता है, ऐसे शब्दों की सूची बना लेनी चाहिए-जिन्हें बालक अपनी छोटी अभ्यास-पुस्तिका में लिख ले। समय-समय पर वह इन शब्दों को देखे और उनका वाचन करे।

9. शब्द-सूची

जिन शब्दों का बालक अशुद्ध विन्यास करता है और अध्यापक उनको शुद्ध कर देता है, ऐसे शब्दों की सूची बना लेनी चाहिए-जिन्हें बालक अपनी छोटी अभ्यास-पुस्तिका में लिख ले। समय-समय पर वह इन शब्दों को देखे और उनका वाचन करे।

हिन्दी की पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम व पाठ्य-सामग्री

(अ) ईसान में भाषा अर्जन की जैविक अनुकूलता

भाषा के जैविक उपागम के अन्तर्गत विकास में बालक में भाषा 800 भारतीय बाल साहित्य कोश कौशलों का विकास भी एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। संदेह बालक तब तक भाषा नहीं सीख सकता जब तक कि वह आपस में भाषा बोलने वालों के बीच बड़ा नहीं होता अर्थात् अनुकरण भाषा-अर्जन की प्राथमिक आवश्यकता है पर इसका अर्थ यह नहीं कि भाषा कभी भी सिखाई जा सकती है। इस बात के बहुत से उदाहरण हैं कि मस्तिष्क तब तक परिपक्व नहीं होता जब तक कि भाषा सरलता से सीखी जाती रहती है पर एक बार यह परिपक्व हो जाये तो क्रियाविधि की स्थिति पक्की हो जाती है अर्थात् इसके बाद भाषा अर्जन की प्रक्रिया में पुर्नव्यवस्था नहीं हो पाती। इस प्रकार की क्रिया विधि जैविकी में पाई जाती है जो तन्तुओं के भ्रूणावस्था के इतिहास से सम्बन्धित है। विकास के दौरान तन्तु एवं कोशिकाएँ अधिक से अधिक विशेषीकृत होती जाती हैं और उनके भौतिक प्रकार्य भी उसी तरह विशेषीकृत होते जाते हैं, इसे विशेषीकरण कहते हैं। विशेषीकरण तन्तु हमेशा पुनः समायोजन की क्षमता रखते हैं। विशेषीकरण का अंत अर्थात् लचीलेपन का ह्रास । भाषा का उदयकाल मस्तिष्क में परिपक्वता की स्थिति से नियंत्रित होता है। दो से दस-बारह वर्ष के बीच बालक का मस्तिष्क भाषा अर्जन की उस स्थिति में होता है, यह सुविधा ह्रास के कारण होती है और उत्तर किशोरावस्था में मस्तिष्क में कुछ ऐसा होता है जो भाषा सीखने को असम्भव/कठिन बना देता है।

(ब) हिन्दी की पाठ्य-सामग्री

-अन्य भाषा के शिक्षण में पाठ्य-सामग्री का निर्माण महत्वपूर्ण शैक्षिक दायित्व है। भाषा शिक्षण का सम्बन्ध भाषायी कौशल में विकास होता। उस दृष्टि से पाठ्य-सामग्री भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित होनी चाहिए। स्पष्ट है कि भाषा शिक्षण और भाषा अधिगम की प्रक्रिया में भाषा विज्ञान का विशेष योगदान है। भाषा सीखने वाला छात्र मातृभाषा की प्रारम्भिक अथवा पर्याप्त जानकारी प्राप्त करने के बाद ही अन्य भाषा सीखता है अतः अन्य भाषा-अधिगम में विशेष योग्यता एवं सूझ-बूझ के साथ तैयार के गई सामग्री की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि हिन्दी भाषा शिक्षण में पाठ्य-सामग्री एक महत्वपूर्ण दायित्व है। इसमें मुख्य रूप से निम्न तथ्यों को विशेष रूप से रखा जाता है

(1) भाषा के अध्यापन में पाठ्य-पुस्तकों का विशेष स्थान है ।

(2) भाषा शिक्षण के उद्देश्य के आधार पर छात्रों में भाषाई कुशलता सबसे अधिक विकसित करनी होती है तो विशिष्ट सामग्री निर्माण की आवश्यकता होती है। जैसे-उच्चारण की सामग्री, अभिव्यक्ति की सामग्री, वर्तनी सामग्री, वाचन सामग्री, लेखन सामग्री आदि । विशिष्ट शिक्षण बिन्दुओं पर आधारित इन सामग्रियों की सहायता से छात्र की विशिष्ट प्रकार की कठिनाई का निराकरण किया जाता है और भाषा का सही ज्ञान कराया जाता है। उपर्युक्त सामग्री के अभाव में हिन्दी भाषा शिक्षण के सिद्धान्तों का महत्व नहीं रह जाता। उचित सामग्री की सहायता से अध्ययन अन्य भाषा के शिक्षण में अधिक सफल होता है। विविध प्रकार की पाठ्य-पुस्तकों तथा अन्य आवश्यक सामग्रियों के निर्माण में छात्रों के स्तर, उनकी योग्यता, रुचि, आवश्यकताओं, निकटवर्ती परिवेश तथा भाषाई संस्कृति आदि से विशेष सहायता मिलती है। इस प्रकार की सामग्री न केवल रुचिकर एवं उपादेय होती है बल्कि छात्रों की अन्य भाषा सीखने की प्रेरणा देने में भी समर्थ होती है। पाठ्यवस्तु के साथ भाषा शिक्षण में सहायक अन्य श्रव्य-दृश्य उपकरण भी अध्यापन की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इनके अनुसार शिक्षण सिद्धान्तों में भी परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है। स्पष्ट है कि शिक्षण के सिद्धान्त शिक्षण के विविध अंगों के सन्दर्भ में ही ग्राह्य एवं महत्वपूर्ण हैं। शिक्षण सिद्धान्तों पर भाषाई परिवेश तथा भाषाशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय घटकों का प्रभाव पड़ता है। घटक न केवल शिक्षण सिद्धान्त बल्कि भाषा अधिगम एवं शिक्षण की प्रक्रिया समग्र रूप से प्रभावित करते हैं। अतः इनकी कार्यकारिता से परिचित होना आवश्यक है।

पाठ्य-सामग्री के साथ ही मूल्यांकन एवं परीक्षण सामग्री निर्माण भी अपेक्षित है। छात्रों ने पाठ्य-सामग्री की सहायता से शिक्षण बिन्दु पर किस शिक्षा तक अधिकार प्राप्त कर लिया, इसका परीक्षण आवश्यक है। साथ ही शैक्षिक उपकरणों की भूमिका भी अति आवश्यक है। विशेषकर भाषा शिक्षण में भाषा प्रयोगशाला भाषा-अधिगम एवं शिक्षण का महत्वपूर्ण स्थान है। टेपरिकार्डर, लिंग्वाफोन एवं अन्य सहायक सामग्री की समुचित व्यवस्था भी हिन्दी भाषा शिक्षण में आवश्यक है।

अन्त में अध्यापकीय कुशलता एवं अन्तर्विभिक्तता को सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया का केन्द्रीय तत्व माना जा सकता है। शिक्षक द्वारा छात्रों को सीखने के लिए उत्प्रेरित करना, अधिगम प्रक्रिया में समुचित मार्गदर्शक देना, समस्यात्मक बिन्दुओं का समाधान करना, विविध घटकों को नियन्त्रित करना एवं भाषाई व्यवहार की समुचित कुशलता का विकास करना वस्तुतः उसका ही गौरवपूर्ण दायित्व है।

(स) बालक के सर्वांगीण विकास में पाठ्यचर्या की भूमिका

शिक्षा की पाठ्यचर्या और प्रक्रियाओं को सांस्कृतिक विषय वस्तु के समावेश द्वारा अधिक से अधिक रूपों में समृद्ध किया जा सकता है। बालकारें के व्यक्तित्व विकास को ध्यान में रखकर भी पाठ्यचर्या का निर्धारण/निर्माण करनाचाहिए। यह तथ्य कि बच्चा ज्ञान का सृजन करता है, इसका निहितार्थ है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक शिक्षक को इस बात के लिए सक्षम बनाए की वे बच्चों की प्रकृति और वातावरण के अनुरूप कक्षायी अनुभवी आयोजित करे, ताकि सारे बच्चों को अवसर मिल पाए। पाठ्यचर्या का उद्देश्य बच्चे के सीखने की सहज इच्छा और युक्तियों को समृद्धकरना होना चाहिए। सक्रिय गतिविधि के द्वारा ही बच्चा अपने आसपास की दुनिया को समझने की कोशिश करता है। इसलिए प्रत्येक साधन का उपयोग इस तरह किया जाना चाहिए कि बच्चों को स्वयं को अभिव्यक्त करने में, वस्तुओं का उपयोग करने में, अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश की खोज करने में और स्वरूप विकास से विकसित होने में मदद मिले। अगर बच्चों की कक्षा के अनुभवों को इस तरह आयोजित करना हो जिससे उन्हें ज्ञान सृजित करने का अवसर मिले तो इसके लिए स्कूल के विषयों और पाठ्यचर्या के क्षेत्रों की फिर से संकल्पना की आवश्यकता होगी। स्कूली पाठ्यचर्या के चार सुपरिचित क्षेत्रों-भाषा, गणित, और सामाजिक विज्ञान में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का सुझाव बालक के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है अतः इनमें परिवर्तन का सुझाव दिया गया है। पाठ्यचर्या सभी क्षेत्रों में बालकों की प्रगति हेतु उपयुक्त भूमिका निभाती है और बालकों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में पाठ्यचर्या एक मजबूत आधार के रूप में होती है। पाठ्यचर्या द्वारा बालकों का सर्वांगीण विकास निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है।

1. काम, कला और पारम्परिक दस्तकारी-काम के सम्बन्ध में आरम्भिक स्तर से शुरू करते हुए काम को अधिगम से जोड़ने के लिए कुछ बुनियादी कदम उठाया जाना चाहिए। उनके पीछे आधार यह है कि ज्ञान काम को अनुभव में रूपान्तरित कर देता है और सहयोग, सृजनात्मकता और आत्म निर्भरता जैसे मूल्यों की उत्पत्ति करता है। कला एवं दस्तकारी को भी पाठ्यचर्या में शामिल किया गया है तथा इसके लिए स्थानीय कारीगरों द्वारा प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

2. पोषण और सुनियोजित शारीरिक गतिविधि-विद्यालय की पाठ्यचर्या में बालकों की उन्नति, पोषण और सुनियोजित शारीरिक गतिविधियों के कार्यक्रमों को सम्मिलित करना चाहिए। स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में शाला पूर्व अवस्था से लेकर आगे की अवस्था तक लड़कों की तरह लड़कियों की ओर भी उतना ही ध्यान दिया जाना चाहिए। 3. सामाजिक संस्कारों का समावेश-राष्ट्रीय निर्माण तथा बालक के विकास की पूर्व शर्त और एक सामाजिक संस्कार के रूप में समग्र मूल्य संरचना को स्वीकार किया जाए जिससे बालकों में सामाजिक संस्कार डाला जा सके और शिक्षा का माध्यम बन सके।

4. लोकतान्त्रिक और न्यायपूर्ण संस्कृति-लोकतान्त्रिक और न्यायपूर्ण संस्कृति में बालकों के समाजीकरण के लिए शिक्षा की भावनाओं को विभिन्न गतिविधियों के द्वारा हर स्तर पर और हर स्तर पर और हर विषय में विषयों के विवेकपूर्ण चुनाव के द्वारा साकार किया सकता है। शान्ति तथा सहिष्णुता के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण पाठ्यचर्या में शामिल किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

5. पाठ्यचर्या एक महत्वपूर्ण माध्यम-विद्यालय के वातावरण को पाठ्यचर्या के एक महत्वपूर्णमाध्यम की तरह देखा गया है, क्योंकि यह बालकों को शिक्षा के उद्देश्यों और सीखने की उन युक्तियों के लिए तैयार करती है जो विद्यालय में सफलता के लिए आवश्यक है। पाठ्यचर्या में बालकों के व्यक्तित्व से सम्बन्धित समस्त विषयों का समावेश किया जाना आवश्यक है। क्योंकि बालक का सम्पूर्ण विकास विद्यालय के द्वारा ही होता है अतः विद्यालय और पाठ्यचर्या बालक के विकास की मजबूत कड़ियां हैं।

6. संसाधनों की उचित व्यवस्था-बालकों के लिए सीखने के संसाधन तैयार किए जाएँ विशेषकर स्कूल और शिक्षा के सन्दर्भ पुस्तकालय हेतु स्थानीय भाषाओं में किताबें और सन्दर्भ सामग्रियाँ उपलब्ध हों। अन्य विषयों से सम्बन्धित पुस्तकें भी पुस्तकालयों में रखी जाएँ जिनका लाभ बालक व शिक्षक दोनों को मिल सके।

7.मूल्यों की शिक्षा-इस बात पर गहरी चिन्ता प्रकट की जा रही है कि जीवन के लिए आवश्यक मूल्यों का ह्रास हो रहा है और मूल्यों पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। पाठ्यचर्या में ऐसे परिवर्तन की जरूरत है जिससे सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा व पाठ्यचर्या एक सशक्त साधन के रूप में सामने आ सके।

8. सांस्कृतिक विषयवस्तु का समावेशी-शिक्षा की पाठ्यचर्या और प्रक्रियाओं को सांस्कृतिक विषयवस्तु के समावेश द्वारा अधिक से अधिक रूपों में समृद्ध किया जाना चाहिए। इसके साथ ही इस बात का प्रयत्न करना कि सौन्दर्य, सामंजस्य और परिष्कार के प्रति बालकों की संवेदनशीलता बढ़े। 9. कार्यानुभव-कार्यानुभव को, सभी स्तरों पर दी जाने वाली शिक्षा का एक आवश्यक अंग होना चाहिए। कार्यानुभव एक ऐसा उद्देश्यपूर्ण और सार्थक शारीरिक काम है जो सीखने की प्रक्रिया का अनिवार्य अंग है जिससे समाज को वस्तुएँ या सेवाएँ मिलती हैं।

कार्यानुभव की गतिविधियाँ बालकों की रूचियों, योग्यताओं और आवश्यकताओं पर आधारित होती है। माध्यमिक स्तर पर दिए जाने वाले पूर्व-व्यावसायिक कार्यक्रमों से उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक पाठ्यचर्या के चुनाव में सहायता मिलती है। अतः पाठ्यचर्या में कार्यानुभव का समावेश किया जाना आवश्यक है। इन समस्त गतिविधियों के द्वारा पाठ्यचर्या में इन्हें सम्मिलित कर बालकों का सर्वांगीण विकास आसानी से किया जा सकता है। इन सबका बालक के जीवन में विशेष महत्व है अतः इनकी शिक्षा बालकों को बाल्यकाल से ही दी जानी चाहिए।

संगठन के सिद्धान्त

भूमिका:-

हिन्दी शिक्षक को अपनी कक्षाओं के लिए निर्धारित पाठ्यचर्या से अवश्य अवगत होना चाहिए। नियोजित शिक्षक के कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं। पाठ्यचर्या इन उद्देश्यों की प्राप्ति का एक सशक्त साधन है। हिन्दी शिक्षक को इस बात पर विचार करना चाहिए कि पाठ्यचर्या शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में कितनी कारगर है ? यह तभी सम्भव है जब पाठ्यचर्या की विषय-सामग्री एवं आधार सिद्धान्तों का शिक्षक को भली-भांति ज्ञान होगा। आइए हम हिन्दी की पाठ्यचर्या, विषय-सामग्री एवं आधार सिद्धांतों पर विचार करें।

पाठ्यचर्या का अर्थ एवं परिभाषा:-

सामान्यतः पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या शब्दों को समानार्थी माना जाता है। वस्तुतः दोनों शब्दों में भेद है। पाठ्यक्रम का अर्थ

व्यापक है और पाठ्यचर्या का सीमित अर्थ है। पाठ्यक्रम में विद्यालय के समस्त शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक कार्य आते हैं जबकि पाठ्यचर्या में शैक्षणिक विषयों एवं तत्सम्बन्धी विषय-सामग्री को ही सम्मिलित किया जाता है। पाठ्यचर्या को इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है-"विषय से सम्बन्धित शैक्षणिक इकाइयों एवं प्रकरणों का चयन एवं सुसम्बद्ध संगठन ही पाठ्यचर्या है।

हिन्दी-पाठ्यचर्या निर्माण के सोपान:-

भाषा-शिक्षण का अपना महत्व है। बालकों का बौद्धिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास भाषा पर निर्भर करता है। हिन्दी स्वयं एक विषय ही नहीं, अन्य विषयों का भाषा के रूप में माध्यम भी है। हिन्दी पहली कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ायी जाती है। विषय-सामग्री व स्तरानुकूल भिन्न-भिन्न कक्षाओं के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यचर्याओं का निर्माण किया जाता है। पाठ्यचर्या निर्माण के लिए निम्नलिखित सोपानों को अपनाया जाता है

1. उद्देश्यों का निर्धारण-प्रत्येक विषय की पाठ्यचर्या के लिए उसके शैक्षणिक उद्देश्यों का निर्धारण आवश्यक है। ये उद्देश्य प्रत्येक विषय के अपनी प्रकृति के अनुसार विभिन्न कक्षा स्तरों के लिए अलग-अलग होते हैं। हिन्दी-पाठ्यचर्या के निर्माण के लिए भी स्तरानुकूल उद्देश्यों का निर्धारण करना चाहिए।

2. विषय-सामग्री का चयन-निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विषय-सामग्री का चयन किया जाता है। हिन्दी-शिक्षण के उद्देश्य के अनुरूप गद्य, पद्य, रचना, व्याकरण आदि का चयन पाठ्यचर्या में करना चाहिए।

3. विषय-सामग्री चयन के आधार-निर्धारित उद्देश्यों के आधार पर विषय-सामग्री का चयन हुआ है अथवा नहीं अर्थात् वे कौन-से आधार हैं, जिनके अनुसार कहा जा सकता है कि यह चयन की गयी विषय-सामग्री उपयुक्त है और यह उद्देश्य प्राप्ति में सार्थक और सक्षम है। इन आधारों को पाठ्यचर्या संगठन के सिद्धांत भी कहा जाता है।

पाठ्यचर्या संगठन के सिद्धान्त

पाठ्यचर्या संगठन के सिद्धांत निम्नलिखित प्रकार से हैं:-

1. विषय-सामग्री का चयन उद्देश्य आधारित-पाठ्यचर्या शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होती है। पाठ्यचर्या के जो उद्देश्य रखे जाते हैं, उनको प्राप्त करने के लिए चयनित की गयी विषय सामग्री उद्देश्य आधारित होनी चाहिए। भाषा-शिक्षण के उद्देश्य साहित्य और भाषा दोनों ही दृष्टियों से व्यापक होते हैं, अतः इनकी प्राप्ति में साहित्य और भाषा इन दोनों के विविध पक्षों से सम्बन्धित विषय-सामग्री स्तरानुकूल रखनी चाहिए।

2. विविधता का सिद्धान्त-पाठ्यचर्या में विविधता होनी चाहिए। जीवन के अनेक रंग हैं और ज्ञान के अनेक क्षेत्र । जीवन के विभिन्न रंगों एवं ज्ञान के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित विषय-सामग्री पाठ्यचर्या में होनी चाहिए। विषय-सामग्री चयन के समय व्यक्तिगत भिन्नता, योग्यता, क्षमता व आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

3.समन्वय का सिद्धान्त-पाठ्यचर्या को संगठन रूप में प्रस्तुत होना चाहिए जिससे कि विविध क्षेत्रों का ज्ञान एवं अनुभव एकीकृत रूप में प्रकट हो सके। एक-दूसरे से असम्बद्ध पाठ्य सामग्री नहीं होनी चाहिए।

4. नमनीयता का सिद्धान्त-पाठ्यचर्या नमनीय होना चाहिए, उसमें लचीलापन होना चाहिए। पाठ्यक्रम निर्माण कोई स्थिर अथवा जड़ प्रक्रिया नहीं है, वह गतिशील और लचीली प्रक्रिया है, जिसमें से अनावश्यक पुरानी पाठ्य-सामग्री को हटाया जा सकता है और नयी पाठ्य सामग्री को सम्मिलित चाहिए।

5.रुचि का सिद्धान्त-रुचि के अभाव में सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया व्यर्थ हो जाती है। पाठ्यचर्या की विषय-सामग्री बालकों की रुचि के अनुकूल होनी चाहिए। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में बालकों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है। उन्हीं के आधार पर विषय-सामग्री एवं प्रकरणों का चयन करना चाहिए। जैसे प्राथमिक कक्षाओं में सामूहिक खेल आधारित प्रकरण लिये जा सकते हैं, क्योंकि इस अवस्था में किया जा सकता है। बालकों की रुचि खेल में अत्यधिक होती है।

6. क्रिया का सिद्धान्त-बालक प्रकृति से क्रियाशील होते हैं। विषय-सामग्री का चयन करते समय बालकों की क्रियाशीलता का ध्यान रखना चाहिए। विषय-सामग्री कोरी सैद्धान्तिक संकल्पना न रहकर व्यावहारिक होनी चाहिए। बालकों की भूमिका पाठ्यचर्या में होनी चाहिए। हिन्दी की पाठ्यचर्या में बालकों के लिए अभिनय, विचार-विमर्श, साहित्यिक प्रतियोगिताएँ, लिखित व मौखिक आदि के लिए स्थान अवश्य रहना चाहिए।

7. जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्त-बालक अपने जीवन में जिन बातों को देखता है, सुनता है, यदि पाठ्य सामग्री का सम्बन्ध उससे होगा तो वह पाठ्य सामग्री ज्यादा व्यावहारिक और उपयोगी होगी। अतः बालकों की पाठ्य सामग्री का सम्बन्ध उसके वातावरण से अवश्य होना चाहिए। वह उसे अपनी जानी-पहचानी सी लगनी चाहिए, तभी वह उसे भली प्रकार से आत्मसात् कर पाएगा।

8. विभिन्न स्तरों की बाह्यचर्या में सुसम्बन्ध-विद्यालयी शिक्षा की प्रक्रिया प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक आदि स्तरों से गुजरती है। प्रत्येक स्तर की पाठ्यचर्या भिन्न होती है। शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक विकास के आधार पर पाठ्यचर्या में भिन्नता होना स्वाभाविक है, लेकिन इसमें स्वाभाविक विकास-जोड़ा आवश्यक है, यह ठीक उसी प्रकार का होना चाहिए जो विकास की अवस्थाओं का है। प्रत्येक कक्षा की पाठ्यचर्या अपने पूर्व कक्षा की तथा अपने बाद की शिक्षा की पाठ्यचर्या से जुड़ी हुई हो। इस क्रमोत्तर विकास में 'सरल से कठिन शिक्षण सूत्र का परिपालन आवश्यक है। हिन्दी में देसी भाषा एवं साहित्य के ज्ञान की उत्तरोत्तर स्वाभाविक वृद्धि होती जायेगी।

पाठ्यचर्या की विषय-सामग्री का चयन करते समय उपर्युक्त सिद्धान्तों का पालन करना

पाठ्यचर्या की समीक्षा:-

पाठ्यचर्या निर्माण के सोपान और सिद्धांतों के आधार पर पाठ्यचर्या की समीक्षा की जा सकती है। एक जागरूक अध्यापक को पाठ्यचर्या की समीक्षा के साथ-साथ उसमें सुधार के लिए सुझाव देते हुए संशोधित पाठ्यचर्या का प्रारूप भी प्रस्तुत करना चाहिए। पाठ्यचर्या की समीक्षा की सुविधा के लिए अंकित बिन्दुओं को आधार बनाया जा सकता है:-

(1) उद्देश्य प्राप्ति की दृष्टि से पाठ्यचर्या की स्थिति।(2) विषय-सामग्री का संगठन।

(3) पाठ्यचर्या की व्यापकता। (4) पाठ्यचर्या के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप का तालमेल।

(5) पाठ्यचर्या का मूल्यांकन की दृष्टि से स्वरूप। (6) बाल-केन्द्रित की दृष्टि से पाठ्यचर्या।

(7) समुदाय-केंद्रित की दृष्टि से पाठ्यचर्या।

(8) पाठ्यचर्या का अन्य विषयों से सह-सम्बन्ध । (9) जीवनोपयोगी की दृष्टि से पाठ्यचर्या।

उपर्युक्त बिन्दुओं को आधार बनाकर शिक्षक पाठ्यचर्या की समीक्षा कर सकता है और पाठ्यचर्या में पायी गयी कमियों अथवा न्यूनताओं को बताते हुए, उनको दूर करने के सुझाव देते हुए नवीन पाठ्यचर्या का प्रारूप प्रस्तुत कर सकता है।

पाठ्यक्रम

-'पाठ्यक्रम' शिक्षा शास्त्र का बड़ा रोचक विषय है। कुछ समय पूर्व तक इस शब्द का बड़ा संकुचित अर्थ लगाया जाता था, किन्तु अब हम पाठ्यक्रम में विद्यालय के समस्त अनुभवों को सम्मिलित कर लेते हैं। छात्र कक्षा में या कक्षा से बाहर विद्यालय की सीमा के अन्तर्गत किसी स्थल पर जो कुछ अनुभव करता है, वह सब पाठ्यक्रम है। पाठ्यक्रम का एक आवश्यक पक्ष विभिन्न विषयों का अध्ययन-अध्यापन भी है। ज्ञान-विज्ञान के अनेकानेक विषय हैं और किसी विषय को छोटा या बड़ा कहना युक्तिसंगत नहीं है। सभी विषयों का अपना महत्व है। हाँ, यह बात अवश्य है कि कुछ विषयों को हम पहले और कुछ को बाद में पढ़ाना चाहते हैं और कुछ विषयों को देश-काल की आवश्यकता के अनुसार अनिवार्य रूप से और कुछ को वैकल्पिक रूप से पढ़ाना चाहते हैं। ज्ञान-विज्ञान के इन अनेकानेक विषयों को हम विभिन्न भाषाओं के माध्यम से पढ़ते पढ़ाते हैं। आजकल साधारण जनता भी इस बात में रुचि लेने लगी है कि पाठ्यक्रम में किस भाषा को स्थान दिया जाये और किस भाषा को स्थान न दिया जाये। भारत के सन्दर्भ में हमारे समक्ष कम से कम चार भाषाओं के दावे पेश होते हैं। ये चार भाषाएँ हैं :-

1. मातृभाषा, 2. राष्ट्रभाषा, 3. प्राचीन सांस्कृतिक भाषा, 4. विदेशी भाषा।

(1) मातृभाषा

एक समय था, जब मातृभाषा की भी भारतीय विद्यालयों में कोई पूछ नहीं थी, किन्तु अब साधारण बुद्धि रखने वाला व्यक्ति भी इस तथ्य को जान गया है कि मातृभाषा का शासन शिक्षा-योजना में सर्वोच्च ही हो सकता है, उससे जरा भी कम नहीं। जो व्यक्ति अन्य भाषाओं का पण्डित तो हो, किन्तु निज भाषा को जानता ही न हो, उससे स्वदेश की उन्नति की आशा करना व्यर्थ है।

(2) राष्ट्रभाषा मातृभाषा के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा का भी विशेष महत्व है। संसार के जो देश एक भाषा-भाषी हैं, वहाँ जनता की मातृभाषा एक ही होती है। भारत बहुभाषा-भाषी देश है। अतः यहाँ यह आवश्यक नहीं कि मातृभाषा ही राष्ट्रभाषा हो । भारतीय संविधान ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया है। हिन्दी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा दोनों है, किन्तु अहिन्दी प्रदेशों में मातृभाषाएँ एवं राष्ट्रभाषा भिन्न हैं। अतः समूचे देश की दृष्टि से भारत में दूसरी भाषा राष्ट्रभाषा हिन्दी है, जिसका अध्ययनअनिवार्यतः छात्रों को करना है।

(3) प्राचीन सांस्कृतिक भाषा:-

तीसरी भाषा प्राचीन सांस्कृतिक भाषा है, जिसके पक्ष का समर्थन अनेक व्यक्ति करते हैं। ग्रीक, लैटिन, संस्कृत आदि ऐसी भाषाएँ मानी जाती हैं, किन्तु संस्कृत की स्थिति कुछ भिन्न है संस्कृत प्राचीन भाषा होते हुए भी मृत नहीं है। इसकी परम्परा अभी भी जीवित है। ग्रीक तथा लैटिन भाषाएँ यूरोप के सामान्य जीवन से उठ चुकी हैं, किन्तु संस्कृत अभी भी भारतीय हिन्दुओं के जीवन में प्रातः से सायं तक के कार्यों में जीवित है। भारत की प्राचीन सांस्कृतिक भाषाएँ मुख्य रूप से संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश हैं, किन्तु इनमें भी संस्कृत का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। अतः प्राचीन सांस्कृतिक भाषाओं में संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की ओर ध्यान देना प्रत्येक जागरूक नागरिक का कर्तव्य है। हिन्दी-भाषी प्रदेशों में संस्कृत का अध्ययन द्वितीय भाषा के रूप में सरलता से अनिवार्य हो सकता है। किसी आधुनिक भारतीय भाषा की अपेक्षा हिन्दी-भाषी प्रदेशों में संस्कृत के अध्ययन का अधिक औचित्य है। हाँ, अहिन्दी-भाषी प्रदेशों में मातृभाषा अथवा राष्ट्रभाषा के साथ सम्बद्ध पाठ्यक्रम के रूप में संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य हो सकता है, किन्तु संस्कृत के शिक्षण की व्यवस्था सभी माध्यमिक विद्यालयों में

अनिवार्य रूप से होनी चाहिए और इसमें छात्रों की संख्या का बहाना स्वीकृत नहीं होना चाहिए। एक बात और है संस्कृत की वैकल्पिक शिक्षा की व्यवस्था केवल कला-संकाय के छात्रों के लिए ही न होकर विज्ञान, प्राविधिक, वाणिज्य और कृषि-समूहों के छात्रों के लिए भी होनी चाहिए। अतः विषयों के समूह इस प्रकार बनाये जायें कि किसी भी छात्र को वैकल्पिक रूप से संस्कृत पढ़ने में अड़चन न पड़े और वह अन्य विषयों के साथ-साथ इसे भी पढ़ सके।

(4) विदेशी भाषा:- चौथी भाषा एक विदेशी भाषा होनी चाहिए। विदेशी भाषाओं में कुछ का महत्व कुछ कारणों से अधिक है। अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी और चीनी भाषाएँ बड़ी ही समृद्ध भाषाएँ हैं। इनमें से अंग्रेजी को वरीयता मिलनी चाहिए, किन्तु अन्य भाषाओं की उपेक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। अंग्रेजी को वरीयता ऐतिहासिक कारणों से मिलनी चाहिए। कुछ लोग अंग्रेजी को अनिवार्य बनाने के पक्ष में हैं। कुछ इसे वैकल्पिक रूप से पढ़ाने को कहते हैं, तो कुछ इसका अध्ययन बिल्कुल समाप्त कर देने को कहते हैं। अंग्रेजी का अध्ययन न तो बिल्कुल समाप्त कर देने की आवश्यकता है और न इसे अनिवार्य बनाने की ही जरूरत है। अंग्रेजी का अध्ययन वैकल्पिक ही होना चाहिए। जो छात्र अंग्रेजी पढ़ने के इच्छुक हों, उन्हें इसे पढ़ने की छूट होनी चाहिए और उन्हें हर प्रकार की सुविधा देनी चाहिए, किन्तु जिन छात्रों की रुचि अंग्रेजी पढ़ने में नहीं है, उन्हें पढ़ाने से कोई लाभ नहीं। इससे न तो अंग्रेजी का ही भला होगा और न उन छात्रों का ही जो बिना रुचि के इसे पढ़ेंगे। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण में अंग्रेजी का प्रचलन अधिक है। इस दृष्टि से केरल हिन्दी प्रचार सभा की मासिक पत्रिका के एक अंग का सम्पादकीय देखिए एक राज्य है जहाँ न हिन्दी के प्रति विरोध है, न अंग्रेजी के प्रति। स्कूलों त्रिभाषा-सूत्र का कार्यान्वयन वर्षों से होता रहा है। इसके अन्तर्गत प्रान्तीय भाषा मलयालम, राष्ट्रभाषा हिन्दी और विदेशी भाषा अंग्रेजी अनिवार्य रूप से दसवीं कक्षा तक सिखायी जाती है। तीनों भाषाओं में परीक्षाएं ली जाती हैं और मैट्रिक में उत्तीर्ण होने के लिए तीनों भाषाओं में उत्तीर्णता अनिवार्य मानी जाती है। हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी को अधिक कालांश और अंक निर्धारित हैं। हिन्दी को भी अंग्रेजी का साया उससे अधिक स्थान दिलाने की माँग उठती रहती है। केरल के कॉलेजों में प्री. डिग्री और स्नातक स्तर पर दो-दो भाषायें सीखनी हैं। अंग्रेजीअनिवार्य भाषा है। दूसरी भाषा के रूप में मलयालम, हिन्दी जैसी भाषायें सीख सकते हैं मलयालम अध्यापकों को इस बात पर चिन्ता लगी रहती है कि मलयालम की अपेक्षा अधिकांश विद्यार्थी हिन्दी सीखना पसन्द करते हैं। मलयालम को अधिक स्थान दिलाने की भी माँग उठा करती है। एम. ए. (हिन्दी) की परीक्षा में बैठने वाले छात्रों की संख्या भी प्रतिवर्ष बढ़ रही है। हिन्दी में पी-एच. डी. करने वाले भी बहुत हैं। अकेले केरल से हिन्दी की पाँच पत्रिकायें निकलती हैं।अंग्रेजी माध्यम स्कूल केरल में अनेक हैं। इन स्कूलों में बच्चों को भेजने में अभिभावक एक प्रकार का संतोष पाते हैं राज्य शासन के क्षेत्र में अंग्रेजी का प्रतिस्थान मलयालम से होता चला आ रहा है। इसमें धीरे धीरे प्रगति हो रही है।

हिन्दी और अंग्रेजी को केरल की जनता अपनी और देश की प्रगति के लिए समान रूप से आवश्यक मानती है। राष्ट्रीय स्तर पर जिस प्रकार हिन्दी काम आयेगी उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी काम आयेगी। यही आम धारणा है। केरल की जनता न हिन्दी-विरोध के पक्ष में है न अंग्रेजी विरोध के। हाँ, राजभाषा के पद से अंग्रेजी को हटाने के लिए आन्दोलन चले हैं अंग्रेजी नामपट्ट और साइन बोर्डों पर कभी कालिख पोती गयी तो कभी अंग्रेजी में तैयार किये गये विधेयक विधानसभा में जला दिये गये। इसका यह मतलब नहीं निकलता कि अंग्रेजी का अध्ययन-अध्यापन सदा के लिए खत्म करने की इच्छा जनता में है।

हाल ही में केरल के कुछ नेताओं और पत्रकारों ने हिन्दी क्षेत्र के अंग्रेजी विरोध के विरुद्ध आवाज के. माधवान कुट्टी ने यह विचार व्यक्त किया है कि यदि हिन्दीतर भाषा-भाषी राज्यों का भी ऐसा संगठन तो क्या होगा। मलयालम के कुछ अन्य समाचार पत्रों ने भी हिन्दी क्षेत्र के अंग्रेजी विरोध को देश की एकता के लिए बाधक माना है। इसके पीछे यह आशंका भी है कि केरल के अभ्यर्थियों को अंग्रेजी के माध्यम से परीक्षा देकर अखिल भारतीय सेवाओं में और रोजगार के अन्य क्षेत्रों में प्रवेश पाने में जो आसानी थी वह नष्ट हो जायेगी और हिन्दी भाषियों से वे हिन्दी में समशीर्षता नहीं पा सकेंगे। केरल के कई केंद्र सरकारी कार्यालयों और राष्ट्रीयकृत बैंकों में हिन्दी अफसर, हिन्दी अनुवादक जैसे पदों पर हिन्दी भाषियों की नियुक्ति जो हुई है उसी से लोगों की इस आशंका को पुष्टि मिलती रही है। भाषा जोड़ने का साधन हो, तोड़ने का नहीं।

कितनी भाषाएँ पढ़ाई जाएँ ?

पाठ्यक्रम में कितनी भाषाओं को स्थान मिलना चाहिए ? वस्तुतः प्रत्येक विद्यालय में जितनी अधिक भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की सुविधा मिल सके, उतना ही अच्छा है, किन्तु सभी भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य करने का कोई प्रश्न नहीं । अनिवार्य अध्ययन कुछ ही भाषाओं का होना चाहिए, वैकल्पिक अध्ययन कुछ अधिक भाषाओं का हो सकता है। कुछ लोग बालक को केवल एक ही भाषा सिखाने का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार बालक को अन्य भाषा सीखने में व्यर्थ ही समय नष्ट करना पड़ता है। वह अन्य भाषा सीखने में प्रायः असमर्थ ही रहता है। इस सम्बन्ध में कनाडा के प्रसिद्ध मस्तिष्क-विशेषज्ञ पेनफील्ड का कथन ध्यान देने योग्य है। उनके अनुसार, "दस वर्ष से नीचे के बालक का मस्तिष्क किशोर मस्तिष्क की भाँति नहीं होता। प्रारम्भिक अवस्था में बालक अपने मस्तिष्क में भाषा की इकाइयों को जमा करती है, जिन्हें बाद में वह अपने शब्द-भण्डार को बढ़ाने में प्रयुक्त करेगा।" डॉ. पेनफील्ड के अनुसार, बालक अधिक भाषाएँ सीखने की सामर्थ्य रखता है। **डॉ. पेनफील्ड** की बात को पूर्णतः न भी माना जाये, तो भी यह निश्चित ही है कि बालक को दो-तीन भाषाओं को सीखने में विशेष कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

प्रारम्भिक पाठ्यक्रम में भाषा:- अब इस प्रश्न पर विचार कर लिया जाये कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर किस भाषा को पाठ्यक्रम का स्थान मिलना चाहिए। प्रारम्भिक विद्यालयों में लोअर-प्राइमरी कक्षाओं अर्थात् कक्षा 1, 2, 3 में केवल मातृभाषा का अध्ययन करना चाहिए। प्रथम तीन वर्षों में किसी अन्य भाषा को प्रारम्भ करना ठीक नहीं है। प्रारम्भिक विद्यालय की अधिकांश से दो कक्षाओं में किसी दूसरी भाषा को प्रारम्भ किया जा सकता है। यह दूसरी भाषा अहिन्दी-प्रदेशों में निहित रूप से राष्ट्रभाषा हिन्दी होनी चाहिए और हिन्दी प्रदेशों में संस्कृत के कुछ सरल श्लोकों का परिचय दिया जा सकता है। वैसे अच्छा यही है कि प्रारम्भिक स्तर पर केवल मातृभाषा ही रहे। हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम में प्राचीन और नवोदित साहित्यकारों की राष्ट्रीय एकता और आदर्श प्रमाणित करने वाली रचनाओं का संकलन किया जाये। साहित्य की विभिन्न विधाओं कविता, कहानी, निबन्ध, नाटक, एकांकी, उपन्यास और संस्मरण

आदि अनेक राष्ट्रीय एकता से अनुप्राणित रचनाएँ आज भी उपलब्ध हैं। उनका संकलन कर विद्यालयों में उपयुक्त कराया जाये। वर्तमान पाठ्यक्रम में प्रश्न उत्तरों की सहायता से राष्ट्रीय एकता का विकास करने का प्रयास किया जाना चाहिए। ऐसे प्रश्नों की सृष्टि कुशल एवं परिश्रमी अध्यापकों की शिक्षण शैली पर निर्भर है। प्राथमिक स्तर में बातचीत के द्वारा भाषा-ज्ञान की वृद्धि के साथ राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास किया जाये। उसके लिए इस तरह के प्रश्न सहायक होंगे

1. तुम पढ़ने कहाँ आते हो ?2. विद्यालय में कौन पढ़ने आते हैं ? 3. ये लड़के तुम्हारे कौन हैं ?

4. सहपाठियों के साथ कैसे रहना चाहिए ? 6.विद्यालय किसका है ?7. विद्यालय की सामग्री किसकी है ?

8. विद्यालय सामग्री की रक्षा किसको करनी चाहिए ? 9. हम सबको किसने जन्म दिया ?

(विद्यालय) (लड़के) (सहपाठी) (मित्र) (हमारा है) (हमारी है) (हमको) (ईश्वर ने)(भाई-भाई) (शक्ति बढ़े)(विद्यालय का)(मिलकर)(भारतवासी)(राष्ट्र को) (भारतवर्ष के)

10. हम सब कौन हैं? 11. सबको मिलकर क्यों रहना चाहिए ?

12. सब छात्रों को मिलकर रहने से किसका नाम ऊँचा होता है ? 13. देश के सब लोगों को कैसे रहना चाहिए?

14. सम्पूर्ण देशवासी क्या कहलाते हैं ? 15. धर्म, जाति, गाँव और राष्ट्र में सबसे अधिक महत्व किसको दोगे ?

16. तुम किस राष्ट्र के निवासी हो ? 17. कौन-सी भावना की आवश्यकता है? व्याकरण की शिक्षा में हम ऐसे शब्दों और वाक्यों का चुनाव करें जिनमें राष्ट्रीय एकता की (एकता) हो।

शब्द भेद, कारक, शब्द उत्पत्ति, संधि, समास आदि के विभिन्न उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं:-

1. सबसे सुन्दर देश भारतवर्ष है।

2. सभी धर्मावलम्बी भारतवर्ष में स्वतन्त्रतापूर्वक अपने धर्म का पालन

3.सभी जातियों को परस्पर मिलकर रहना चाहिये।

4. सभी प्राणी ईश्वर के अंश हैं।

5. भारतवर्ष की उन्नति के लिए एकता आवश्यक है।

माध्यमिक पाठ्यक्रम में भाषा:-

पूर्व-माध्यमिक स्तर पर हिन्दी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी तथा संस्कृत का अध्यापन होना चाहिए और अहिन्दी-भाषी प्रदेशों में मातृभाषा, हिन्दी तथा संस्कृत का। संस्कृत मातृभाषा और राष्ट्रभाषा की आधारभूत भाषा होगी, अतः इसे तीन भाषाओं का बोझ न समझकर दो ही भाषाओं का भार समझना ठीक होगा। फिर भी उन पर हिन्दी-भाषी प्रदेशों के छात्रों की अपेक्षा कुछ भार अधिक पड़ेगा ही, परन्तु यह भार अपरिहार्य है। इस तथ्य को भुला देने से ही दक्षिण में भाषा के सम्बन्ध में बड़ा भम फैला हुआ है।

उत्तर माध्यमिक स्तर पर उन्हीं भाषाओं का अध्ययन जारी रहना चाहिए, जिन्हें छात्र ने पूर्व-माध्यमिक स्तर पर पढ़ा है। हाँ, वैकल्पिक रूप से इस स्तर पर एक विदेशी भाषा का प्रारम्भ कर देना चाहिए। किसी ऐसी विदेशी भाषा का अध्ययन उत्तर माध्यमिक स्तर से पहले करना छात्रों की शक्ति का अपव्यय करना है। इस स्तर पर अंग्रेजी, फ्रेंच या रूसी भाषा का अध्ययन किया जा सकता है। विदेशी भाषाओं में अंग्रेजी को वरीयता मिलेगी, किन्तु कुछ छात्र रूसी या चीनी भाषाएँ भी पढ़ेंगे।

उच्च पाठ्यक्रम में भाषा:- उच्च स्तर पर किसी भी भाषा को अनिवार्य करने की आवश्यकता नहीं है। कॉलेज एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में विशेष योग्यता के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए। प्रत्येक भाषा एवं साहित्य का वैकल्पिक रूप से अध्ययन किया जा सकता है, किन्तु सम्पूर्ण उच्च शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा राष्ट्रभाषा ही होनी चाहिए। उच्च स्तर के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी, संस्कृत व रुसी आदि भाषा पुस्तकालय-भाषा के रूप में ही रह सकती हैं। छात्र इन भाषाओं की पुस्तकों को पढ़ सकते हैं, किन्तु भावाभिव्यक्ति का साधन मातृभाषा ही रहेगी। हाँ, यदि किसी छात्र ने अंग्रेजी, संस्कृत, रूसी, फ्रेंच, चीन आदि भाषाओं में से किसी भाषा के विशेष अध्ययन को ही चुना है और वह उसमें स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करना चाहता है अथवा उस भाषा एवं साहित्य में अनुसन्धान कार्य करना चाहता है, तब तो उसे उस भाषा में भाव-ग्रहण की ही नहीं, भावाभिव्यक्ति की भी योजना करनी होगी। ऐसी दशा में उस छात्र के लिए शिक्षा एवं परीक्षा का माध्यम मातृभाषा न होकर राष्ट्रभाषा होना चाहिए।

पाठ्य-सामग्री

-आधुनिक शिक्षा प्रणाली में दृश्य-श्रव्य साधनों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। समस्त शिक्षण सूत्रों में से एक शिक्षण सूत्र यह भी है कि बालक को पढ़ाते समय "हमें स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना चाहिये", दृश्य-श्रव्य साधनों का अत्यधिक प्रयोग आधुनिक काल में किया जाता है ताकि उपर्युक्त सूत्र को शिक्षण में महत्वपूर्ण स्थान दिया सके। कठिन से कठिन बात को इन दृश्य-श्रव्य साधनों द्वारा सरलतापूर्वक समझाया जा सकता है। शिक्षक के लिये केवल विद्वान होना ही पर्याप्त नहीं है, सबसे सफल शिक्षक वह है जो कठिन से कठिन बात को छात्रों के स्तरानुकूल दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग कर उसे सरल ढंग से समझा सके।

दृश्य-श्रव्य साधनों का महत्व:- दृश्य-श्रव्य साधनों का महत्व समझाने से पहले यह जानना आवश्यक है कि दृश्य-श्रव्य साधनों का शिक्षा शास्त्रियों की शब्दावली में क्या अर्थ है। किसी भी प्रकार से शिक्षा प्राप्त करने पर हमारा मस्तिष्क क्रियाशील हो जाता है, मस्तिष्क में क्रियाशील बनाने में हमारी ज्ञानेन्द्रियों का बहुत बड़ा हाथ होता है। किसी ने ठीक कहा है कि "नेत्र और कान नामक ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान के प्रवेश द्वार हैं", इसीलिए शिक्षक की सहायता के ऐसे उपकरण निकाले गये हैं जिनके प्रयोग से शिक्षण-कार्य अधिकप्रभावशाली बन सकता है। दृश्य-श्रव्य साधनों को तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :-

(1) दृश्य-साधन-जो उपकरण केवल नेत्रों से सम्बन्ध रखते हैं, उसे दृश्य उपकरण कहते हैं, उदाहरणार्थ मूक चित्र, प्रोजेक्ट, चित्र -विस्तारक यन्त्र, मानचित्र, प्रतिभूति मॉडल, एलबम, कार्टून आदि।

(2) अन्य साधन-जो उपकरण केवल कानों से सम्बन्ध रखते हैं, उन्हें श्रव्य उपकरण कहते हैं, उदाहरणार्थ ग्रामोफोन, रेडियो आदि।

(3) दृश्य-श्रव्य साधन-जो उपकरण नेत्रों और कानों दोनों से सम्बन्ध रखते हैं, उसे दृश्य-श्रव्य उपकरण कहते हैं, उदाहरणार्थ चलचित्र, टेलीविजन, नाटक आदि । सामग्री द्वारा कठिन अमूर्त विचार व तथ्य चाक्षुष-अनुभूति-गम्य बनाये जा सकते हैं व इसीलिये बोधगम्य भी बनाये जा सकते हैं। अतः विद्यार्थियों की दृष्टि से दृश्य-श्रव्य साधन लाभदायक हैं।

(1) दृश्य-श्रव्य साधन शिक्षकों व विद्यार्थियों दोनों ही की दृष्टि से लाभदायक-दृश्य-श्रव्य साधनों द्वारा शिक्षकों को समझाने में सरलता रहती है व विद्यार्थियों को समझने में सरलता रहती है। किसी जटिल तथ्य को शिक्षक यदि चार्ट द्वारा समझाता है तो विद्यार्थी तुरन्त समझ जाता है व कठिन से कठिन तथ्य भी समझने के उपरान्त सरल लगने लगता है।

(2) विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण में स्पष्टता व अनिश्चितता-दृश्य-श्रव्य साधनों के द्वारा विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण में और अधिक स्पष्टता व अनिश्चितता आ जाती है। कक्षा-शिक्षण का मुख्य उद्देश्य होता है विचारों में स्पष्टता व अनिश्चितता लाना। इस उद्देश्य की प्राप्ति में दृश्य-श्रव्य साधनों का अत्यधिक योगदान हो सकता है। चार्ट, चित्र, प्रतिमूर्ति, मौखिक उदाहरण द्वारा विचाराभिव्यक्ति में स्पष्टता व निश्चितता आ जाती है व विद्यार्थी सरलतापूर्वक जटिल से जटिल तथ्य भी समझ लेते हैं।

(3) दृश्य-श्रव्य साधनों में निर्जीव तथ्यों को भी जीवित करने की सामर्थ्य-कहावत प्रसिद्ध है शिक्षक अपने सजीव उदाहरणों द्वारा व सजीव वर्णन क्षमता द्वारा मृत पात्रों में भी प्राण फूँक देता है। जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करके शिक्षक विषय को रोचक बना देता है। विशेष रूप से यदि शिक्षक कोई ऐतिहासिक नाटक पढ़ा रहा है व युद्ध स्थल का चित्र दिखाकर प्रभावोत्पादक स्वर में अध्ययन करता है तो लगता है कि अतीत की घटनायें निर्जीव तथ्यों से भरपूर नहीं है। उनका सम्बन्ध हमारे जीवन की अनुभूतियों से है अन्यथा ऐतिहासिक घटनायें *गड़े हुए मुर्दे उखाड़ने" की तरह लगती हैं।

(4) दृश्य-श्रव्य साधनों की उपयोगिता विषय-वस्तु को याद रखने में कुछ शिक्षक व विद्यार्थी समझते हैं कि दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग केवल सजावट के लिए (पाठ को) किया जाता है लेकिन वे भूल जाते हैं कि इनकी उपयोगिता शिक्षण में कितनी है। इन साधनों के माध्यम से अर्जित ज्ञान स्थायी स्मृति का अंग बन जाता है व जीवन-पर्यन्त ये तथ्य नहीं भूल पाते क्योंकि तथ्यों को भली-भाँति आत्मसात किया जा चुका है। ब्ल्यू, नायल ने ठीक ही कहा है "अच्छी शिक्षा किसी भी शिक्षा कार्यक्रम का आधार है। दृश्य-श्रव्य साधन इस शिक्षा क्रम के आवश्यक अंग हैं।

(5) कम समय में अधिक सीखना संभव-दृश्य-श्रव्य साधनों द्वारा कम समय में अधिक सिखाया जा सकता है। नेत्र और कान अधिक उपयोगी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जिनके प्रयोग से प्राप्त किया हुआ अनुभव प्रत्यक्ष होता है, जिसकी वजह से बालक के समझने में आसानी हो जाती है।

(6) कठिन विचार भी इनकी सहायता से बोधगम्य-प्रत्येक बालक को सरल तथ्य तो शीघ्रातिशीघ्र समझ में आ जाते हैं लेकिन विषय-वस्तु के कठिन स्थलों का स्पष्टीकरण उचित दृश्य-श्रव्य सामग्री द्वारा प्रस्तुत करने पर ही विद्यार्थी समझ पाते हैं। जब तक दैनिक जीवन के उदाहरण प्रस्तुत न किये जायें तथ्य समझ में नहीं आते।

दृश्य-श्रव्य साधनों का महत्व

1. कम समय में अधिक सीखना 2. कठिन विचार भी बोधगम्य (विद्यार्थी के लिये)

3. शिक्षक व विद्यार्थी दोनों के लिए लाभदायक 4. विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण में स्पष्टता व अनिश्चितता

5. निर्जीव तथ्यों को भी जीवन्त करने की सामर्थ्य 6. विषय-वस्तु का याद रखने में सहायक

7. पाठ को रोचक बनाने में सहायक8. विद्यार्थियों को संलग्न रखने में सहायक

9. सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों को समझाने में सहायक (शिक्षक की दृष्टि से) 10. आत्म शिक्षा में सहायक के भेद

(7) पाठ को रोचक बनाने में सहायक-मातृभाषा शिक्षण में समस्त दृश्य-श्रव्य साधनों का विशेष महत्व है। इन उपकरणों की सहायता से शिक्षण कहीं अधिक रोचक बनाया जा सकता है। ये दृश्य-श्रव्य साधन शिक्षा की प्रणाली को उत्तम बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। सबसे अधिक लाभ तो यह है कि इन साधनों के प्रयोग से पाठ रोचक बन सकेगा। बाल-केन्द्रित शिक्षा के फलस्वरूप बालक की रुचि का विशेष रूप से ध्यान रखना आधुनिक शिक्षक का प्रथम कर्तव्य है। साधनों के द्वारा बालक रुचिपूर्वक पाठ पढ़ सकेगा जिससे कि अनुशासन सम्बन्धी अनेक समस्याओं से भी शिक्षक मुक्ति पा सकेगा। किसी ने ठीक ही कहा है कि "रुचि शिक्षा के क्षेत्र में एक महानतम शब्द है।" यदि मातृभाषा शिक्षक इन उपकरणों की सहायता से बालकों की पाठ में रुचि बनाये रखने में समर्थ सिद्ध होता है तो इसका मतलब है कि पाठ सफलता की कोटि में अवश्य पहुँच जायेगा।

(8) विद्यार्थियों को संलग्न रख सकने में सहायक-रुचि और ध्यान का घनिष्ठ सम्बन्ध है।अगर ये उपकरण बालक की रुचि बढ़ाने में सफल सिद्ध हो सकें तो अपने आप बालकों का ध्यान पाठ में लग सकेगा। मातृभाषा शिक्षक के सामने पहली समस्या यही होती है कि बालकों का ध्यान पाठ में केन्द्रित कैसे किया जाये। किसी सीमा तक बालकों की रुचि और ध्यान पर पाठ की सफलता निर्भर करती है। अतः इन उपकरणों के प्रयोग से विद्यार्थियों को संलग्न रखा जा सकता है।

(9) सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को समझाने में सहायक (शिक्षक की दृष्टि से लाभदायक)-प्रसिद्ध शिक्षण सूत्रानुसार हमें स्थूल से

सूक्ष्म की ओर बढ़ना चाहिये। सूक्ष्म बातों को मौखिक उदाहरणों द्वारा समझाने में अध्यापक को व समझने में विद्यार्थियों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। बहुत-सी बार पाठ्य-पुस्तक में ऐसे पाठ आ जाते हैं कि जिनकी सूक्ष्म बातों को विद्यार्थी को समझाना बड़ी टेढ़ी खीर है किन्तु चित्र विस्तारक यन्त्र अथवा और किसी उपकरण की सहायता से इन सूक्ष्म बातों को समझना व समझाना लेशमात्र भी कष्टप्रद न होगा।

(10) आत्म-शिक्षा में सहायक-इन उपकरणों के द्वारा किया हुआ अध्यापन मन पर स्थायी संस्कार बना देता है और इस प्रकार बहुत-सी बातें बालक स्वयं ही चित्र देखकर सीख लेता है और उन्हें बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उदाहरणार्थ *दियासलाई बनाने की विधि नामक पाठ मातृभाषा की पाठ्य-पुस्तक में दूसरी अथवा तीसरी कक्षा के विद्यार्थियों के लिए निर्धारित है। दियासलाई बनने का पूरा क्रम मातृभाषा शिक्षक यदि मौखिक रूप से समझाने का प्रयत्न करे तो वह कभी सफल नहीं हो सकता, हाँ उनको विषय पर आधारित प्रश्नों के उत्तर रटवाने में अवश्य समर्थ सिद्ध हो सकता किन्तु यदि प्रोजेक्ट की सहायता से दियासलाई बनाने की विधि चित्रों द्वारा दिखला दी जाये तो बिना शिक्षक के समझाये ही विद्यार्थी आजीवन उस स्वअर्जित ज्ञान को भूल न सकेंगे। अतः ये उपकरण बालक द्वारा स्वयं प्राप्त ज्ञान की योजना में सहायक सिद्ध होते हैं। विद्यालय में इन उपकरणों के सफल प्रयोग के लिए मातृभाषा शिक्षक को कुछ मुख्य सिद्धान्त ध्यान में रखने चाहिए

(1) अधिकतर शिक्षक इन उपकरणों को निर्धारित पाठ्यक्रम से अलग, शिक्षा प्रणाली में एक गौण स्थान देना चाहते हैं किन्तु वास्तव में ये हमारी शिक्षा योजना के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में हैं।

(2) ये सभी उपलब्ध साधन मात्र हैं, साध्य नहीं, ये पाठ्य-पुस्तक अथवा अध्यापक का स्थान नहीं ले सकते। अतः दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग उपयुक्त स्थान पर विद्यार्थियों के मानसिक स्तरानुकूल एवं कुछ विशेष पावें में ही होना चाहिए, इनका प्रयोग प्रत्येक पाठ में करना अनावश्यक है।

(3) इन उपकरणों का प्रयोग करना, शिक्षक को आना चाहिए वरना ये उपकरण शिक्षक की सहायता करने की अपेक्षा कक्षा में अनुशासनहीनता ला देंगे। उदाहरणार्थ प्रोजेक्ट का प्रयोग करते समय यदि मातृभाषा शिक्षक ने पहले से ठीक प्रबन्ध प्रत्येक छोटी से छोटी बात का नहीं किया तो उस समय कक्षा में गड़बड़ी हो जायेगी और शिक्षक पाठ के विकास में इस उपकरण से पूर्णरूप से लाभ न उठा पायेगा और विद्यार्थियों को भी पाठ में संलग्न न कर सकेगा। अतः अधिक अच्छा हो यदि शिक्षकों को इस क्षेत्र में भी विशेष प्रशिक्षण दिया जाये ताकि वे इस कला को भी सीख सकें। प्रत्येक नया प्रयोग तभी सफल हो सकता है जबकि उसको कार्यान्वित करने वाले उस कला में दक्ष हों।

(4) कुछ समय पश्चात् नियमित रूप से इन दृश्य-श्रव्य साधनों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि ये उपकरण शिक्षा में कहाँ तक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं या इन्हें और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इनमें और क्या सुधार किये जायें।

दृश्य उपकरण

(1) श्यामपट-नेत्रों से दिखाई देने वाले उपकरणों में श्यामपट का प्रयोग करना शिक्षक के लिए सबसे सरल है। मातृभाषा का कोई भी पाठ बिना श्यामपट की सहायता से सफलतापूर्वक नहीं पढ़ाया जा सकता। गद्य पाठ पढ़ाते समय बहुत से चित्र श्यामपट पर बनाये जा सकते हैं, उदाहरणार्थ समुद्र तल के जीव" नामक पाठ को श्यामपट पर खींचे गये चित्रों की सहायता से समझाना सरल है। बार्नेट का कथन है कि "शिक्षण के लिए श्यामपट के चित्र अत्यन्त ही प्रभावशाली होते हैं। पूर्वांकित चित्र किसी विषय में तथ्य दृढ़ एवं निश्चित करने में इतने सहायक तथा सफल नहीं होते जितने कि सामने बने हुए चित्र । इसके अतिरिक्त सामने बने हुए चित्र बालकों को सूक्ष्मतम विचारों की ओर ले जाने में अधिक सहायक होते हैं।" गद्य पाठ एवं पद्य पाठ पढ़ाते समय श्यामपट पर शब्दार्थ लिखे जा सकते हैं, व्याकरण पाठ में उदाहरण, वाक्य एवं परिभाषा श्यामपट पर लिखी जाती हैं। निबन्ध का सारांश, छोटी कक्षाओं में सुलेख के नमूने आदि लिखने के लिए श्यामपट का प्रयोग शिक्षक के लिए परमावश्यक है।

2) मानचित्र, चित्र चार्ट, (मॉडल) प्रतिमूर्ति आदि- पाठ्य पुस्तक में बहुत से पाठ ऐतिहासिक एवं भौगोलिक ज्ञान पर आधारित होते हैं। इन पाठों में विषय के स्पष्टीकरण के लिए मातृभाषा शिक्षक को मानचित्र का प्रयोग करना चाहिए। महापुरुषों की जीवनी पढ़ाते समय या जिन विषयों से सम्बन्धित मॉडल नहीं दिखाये जा सकते उनके लिए पूर्वाजित चित्रों का प्रयोग किया

जा सकता है। हिन्दी साहित्यकारों के चित्र आवश्यकतानुसार दिखाना भी सम्भव है। सूक्ष्म बातों को समझाने में चार्ट की सहायता ली जा सकती है। उदाहरणार्थ हिन्दी साहित्य का काल विभाजन जितनी कुशलतापूर्वक चार्ट की सहायता से समझाया जा सकता है, उतना और किसी साधन के द्वारा नहीं। कुछ विषय मॉडल की सहायता से भली-भाँति समझाये जा सकते हैं, उदाहरणार्थ गद्य पाठ में ग्राम पंचायत का मॉडल बनाया जा सकता है और भी ऐसे कितने ही पाठ होते हैं जिन्हें मॉडल की सहायता से समझाया जा सकता है।

(3) सरस्वती यात्रायें-मातृभाषा शिक्षण में इन सरस्वती यात्राओं का बहुत महत्व है। यह सबसे प्राचीन दृश्य साधनों में से है। इसलिये एक विद्वान ने लिखा है कि "यह दृश्य साधनों में सबसे महत्वपूर्ण और सबसे वास्तविक है।" निबन्ध के कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनमें कि इन सरस्वती यात्राओं की सहायता से निबंध की रूपरेखा बड़ी सफलतापूर्वक तैयार की जा सकती है जैसे किसी नुमाइश का वर्णन, मेले का वर्णन, किसी प्राकृतिक दृश्य का वर्णन आदि। कक्षा शिक्षण के पूरक के रूप में ये सरस्वती यात्रायें महत्वपूर्ण हैं, साथ ही निरीक्षण शक्ति का भी विकास होता है किन्तु इन सरस्वती यात्राओं की तैयारी पहले से की जानी चाहिए। तभी इन सरस्वती यात्राओं का कोई विशेष शैक्षणिक महत्व हो सकेगा।

(4) मूक चित्र-इन चित्रों को दिखाते समय ध्वनि का प्रयोग नहीं किया जाता है। चलचित्रों के इतिहास का यदि पता लगायें तो विदित होगा कि पहले मूक चित्र ही बना करते थे जिनमें ध्वनि नहीं होती थी। मातृभाषा शिक्षक रचना-शिक्षण में इन मूकचित्रों का प्रयोग कर सकता है, उदाहरणार्थ प्राकृतिक दृश्य, काश्मीर की घटनाओं का प्रदर्शन आदि। (5) चित्र-दर्शक (Projector)-प्रोजेक्टर बिना बिजली के भी चल सकता है-इसमें किसी भी विषय से सम्बन्धित चित्र स्लाइड्स (Slides) के द्वारा दिखलाया जा सकता था। रचना-शिक्षण में चित्र-वर्णन (Picture composition) का पाठ इन स्लाइड्स की सहायता से बड़ी सफलतापूर्वक चल सकता है। किसी भी चित्र को दिखलाने के पश्चात् मौखिक रूप से उस पर आधारित प्रश्न पूछकर पाठ का विकास किया जा सकता है।

(6) चित्र-विस्तारक यन्त्र (Epidiascope)-चित्र-विस्तारक यन्त्र के लिए बिजली का होना अनिवार्य है, बिना इसके यह नहीं चल सकता। चित्र-विस्तारक यन्त्र में स्लाइड बनवाने की आवश्यकता नहीं पड़ती बल्कि किताब के पृष्ठ का कोई चित्र उसमें लगा देने से वह चित्र रजपट पर बड़े आकार में परीक्षा को दिखाया जा सकता है। जहाँ तक प्रयोग का प्रश्न है वह ठीक वैसा ही है जैसा कि प्रोजेक्टर का। मातृभाषा शिक्षक गद्य-रचना पाठ में विशेष रूप से इस यन्त्र का लाभ उठा सकता है।

श्रव्य उपकरण

(7) ग्रामोफोन-यह उपकरण प्रत्येक अवस्था के बालक के लिए लाभदायक है। मातृभाषा शिक्षक विद्यार्थियों के उच्चारण की शुद्धता के लिए इन ग्रामोफोन रिकार्ड्स का आश्रय ले सकता है। उच्चारण के साथ स्वराघात, बल, लय इन सब बातों का ज्ञान विद्यार्थी इनकी सहायता से ठीक-ठीक प्राप्त कर पाता है। हो सकता है कि शिक्षक से कुछ उच्चारण सम्बन्धी भूलें हो जायें किन्तु इन रिकार्ड्स के द्वारा कभी भूल नहीं हो सकती। इसलिए भाषा ज्ञान पर आधारित इन रिकार्ड्स का महत्व भाषा शिक्षण में अत्यधिक बढ़ गया है। कविता पाठ, नाटकीय संवाद एवं भाषण भी इन रिकार्ड्स के द्वारा सिखलाये जा सकते हैं।

(8) रेडियो-यह मनोरंजन के साधनों में से एक लोकप्रिय साधन है। आकाशवाणी से प्रसारित कार्यक्रम रोचक और ज्ञानवर्द्धक होता है, कविता पाठ, वार्ता, समाचार आदि के कार्यक्रम मनोरंजक होने के साथ-साथ बालक को शिक्षित करने वाले भी होते हैं किन्तु विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से प्रसारित कार्यक्रम बालक के भाषा सम्बन्धी ज्ञान में वृद्धि करता है, बालक मौखिक अभिव्यक्ति में कुशल हो जाता है, उनका मनोरंजन भी होता है और ज्ञान भी प्राप्त होता है। बालकवि सम्मेलन, संवाद, वाद-विवाद, बाल नाटक आदि का कार्यक्रम बालक को एक बहुत बड़ी प्रेरणा देता है। मौलिक रचना के लिए जो कि भाषा शिक्षण के उद्देश्यों में से एक है समय-सारणी इस प्रकार बनाई जाये ताकि छात्रों को रेडियो के इस कार्यक्रम को सुनने का अवसर मिल सके, इसके लिए विद्यार्थियों के मस्तिष्क को पहले से तैयार करना परमावश्यक है ताकि वे एक अच्छे श्रोता बनकर कार्यक्रम

का पूरा लाभ उठा सकें।

दृश्य-श्रव्य साधन

(9) नाटक-पाठ्य-पुस्तक में निर्धारित नाटक स्कूल के रंगमंच पर सफलतापूर्वक खेले जा सकते हैं और इसकी सहायता से फिर कक्षा में वही नाटक यदि मातृभाषा शिक्षक पढ़ाये तो पाठ अत्यन्त सफल हो सकेगा। प्रत्येक कक्षा की पाठ्य-पुस्तक में कम से कम चार या पाँच नाटक होते हैं और इन्हें सफलतापूर्वक कक्षा के विद्यार्थियों द्वारा बाल सभा के कार्यक्रम में रंगमंच पर खेला जा सकता है। तत्पश्चात् कक्षा में इन नाटकों का अध्यापन अधिक सजीव बन सकेगा।

(10) चलचित्र (Films)-यहाँ पर चलचित्र का मतलब उन चित्रों से लेशमात्र भी नहीं है जोकि प्रौढ़ लोग देखते हैं। यहाँ पर हमारा सम्बन्ध है शिक्षा सम्बन्धी चलचित्रों से। बच्चों को स्कूल की ओर से ऐसे चित्र (Children's Films) दिखाने चाहिये जिनका कथानक बालजीवन की समस्याओं से सम्बन्धित हो। इसके अतिरिक्त बालकों को वास्तविक जीवन के चलचित्र (Documentaries), समाचार चलचित्र (News-reels) आदि दिखाये जा सकते हैं जो शिक्षाप्रद हो। 'हमारे पूर्वज' पुस्तक को चलचित्रों के माध्यम से पढ़ाया जा सकता है। इन शिक्षाप्रद चलचित्रों की सहायता से मातृभाषा शिक्षक विद्यार्थियों को चरित्र-चित्रण करना सिखा सकता है। नाटकीय आलोचना एवं प्रभावशाली संवादका ज्ञान कराया जा सकता है। मानव का विकास कैसे हुआ, इस गूढ बात को चलचित्र की सहायता सेसमझाया जा सकता है। खेद का विषय है कि हमारे देश में उपयुक्त बाल चलचित्र की संख्या में बहुत छोड़े हैं, अभी इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रयास आवश्यक है।

(11) टेलीविजन-यह एक दृश्य-श्रव्य साधन इसलिए है क्योंकि इसमें रजतपट पर सुनाने वाले को भी हम देख सकते हैं। विदेशों में यह उपकरण काफी प्रचलित हो चुका है किन्तु भारत में है। इसका प्रचलन अभी कम ही है। यह रेडियो की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली साधन है-मनोरंजन एवं ज्ञानवर्द्धक का-क्योंकि इसमें हम अपनी दो प्रमुख इन्द्रियों का संयुक्त प्रयोग करते हैं जिससे ज्ञान प्राप्ति में अधिक सहायता मिलती है। रेडियो की भाँति ही इस उपकरण का भी प्रयोग मातृभाषा शिक्षण में किया जा सकता है।

इन दृश्य-श्रव्य साधनों को प्रभावपूर्ण रीति से कक्षा में प्रयोग करना एक कला है जो कि शिक्षक की कुशलता पर निर्भर करता है जैसा कि पी. मोफात ने भी कहा है कि "ये दृश्य-श्रव्य सामग्री कक्षा में कितनी प्रभावपूर्ण हो सकेगी, यह निर्भर करेगा शिक्षक की कार्य-कुशलता पर व सीखने के अनुभवों से इस सामग्री का सम्बन्ध जोड़ने की सामर्थ्य पर।"

(12) कार्टून एवं सूचना पट-अभी तक मातृभाषा शिक्षण हेतु इन दोनों साधनों का प्रयोग कम है लेकिन शिक्षा संस्थायें यदि इनका प्रयोग करें अपने शिक्षकों द्वारा तो लाभ की ही सम्भावना है। बहुत से हास्यप्रद तथ्य व घटनायें कार्टून द्वारा कक्षा में पढ़ाये जा सकते हैं, लेकिन ये स्वस्थ हास्य और व्यंग्य को ही प्रोत्साहित करें इसकी सावधानी अवश्य बरती जाये। एक बड़ा सूचना पट भित्ति-पत्रिका (Wall paper magazine) के लिये बनवाया जा सकता है। बहुत-सी ऐसी सामग्री विशेष रूप से छपी हुई जिसे शिक्षक कक्षा में श्यामपट पर लगाकर नहीं दिखा सकता। इस सूचना पट पर लगाकर विद्यार्थियों को आदेश दे सकता है कि गहन अध्ययन की दृष्टि से सूचना-पट पर लगे हुए लेख को पढ़ें। निबन्ध-शिक्षण में सूचना-पट नामक साधन का आश्रय लिया जा सकता है। ये दोनों दृश्य-साधन की श्रेणी में आते हैं।

(13) दृश्य-श्रव्य सामग्री प्रयोगशाला द्वारा हिन्दी ध्वनियों का शिक्षण (Audio-Visual Laboratory)-आधुनिक भाषा-शिक्षण विशेषज्ञों ने ध्वनियों के शिक्षण हेतु भाषा प्रयोगशालाओं की स्थापना पर अत्यधिक बल दिया है। भाषा प्रयोगशाला में दृश्य-श्रव्य सामग्री प्रयोगशाला उसका एक प्रमुख विभाग होता है। इस विभाग में विद्यार्थियों को क्षेत्र में जाकर वैज्ञानिक ढंग से उपकरणों की सहायता से प्रशिक्षित किया जा सकता है। प्रत्येक भाषा प्रयोगशाला के दो विभाग होते हैं। एक अनुसंधनात्मक भाषा प्रयोगशाला व दूसरा शैक्षिक भाषा प्रयोगशाला का विभाग। शैक्षिक भाषा प्रयोगशाला के भी दो विभाग होते हैं-ध्वनि-विज्ञान प्रयोगशाला व दृश्य-श्रव्य प्रयोगशाला। ध्वनि-विज्ञान प्रयोगशाला के माध्यम से विद्यार्थियों की ध्वनि सम्बन्धी शंकाओं का समाधान किया जा सकता है। ध्वनि-विज्ञान, प्रयोगशाला में बहुत से उपकरणों की सहायता से ध्वनियों का शिक्षण सम्भव जैसे टेपरिकार्डर, तालु स्पर्श अंकन (Palatography), एक्स-रे, सिनेमा स्लाइड्स, स्पन्दनग्राह (Kymograph), सुर यंत्र (Pitchmeter) इत्यादि। दृश्य-श्रव्य प्रयोगशाला में दो प्रकार की सामग्री होती है-दृश्य सामग्री व श्रव्य सामग्री। ये भी दो प्रकार

की होती हैं-प्रक्षेपित व अप्रेक्षणीय (Projected and Non projected)। प्रक्षेपित सामग्री में यन्त्र की सहायता आवश्यक है व दृश्य-श्रव्य दोनों हो सकती है जैसे चलचित्र, फिल्म है-प्रक्षेपित व अप्रक्षेपणीय (Projected and Non-Projected) । प्रक्षेपणीय सामग्री में यन्त्र की सहायता आवश्यक है व दृश्य-श्रव्य दोनों हो सकती हैं। जैसे-चलचित्र, फिल्म स्ट्रिप और ऐपिडायस्कोप। प्रक्षेपण सामग्री में यन्त्रों की सहायता नहीं ली जाती अर्थात् प्रक्षेपण आवश्यक नहीं। उदाहरणार्थ चित्र, नाटक, श्यामपट यात्रायें आदि। शैक्षिक दृष्टि से भाषा प्रयोगशाला में श्रव्य सामग्री का अत्यधिक महत्व है। इन प्रयोगशालाओं में दृश्य-श्रव्य सामग्री द्वारा सुनना और बोलना नामक भाषा कौशल सिखाया जा सकता है। इन भाषा प्रयोगशालाओं में लगभग बीस या पच्चीस प्रकोष्ठ (Booth) बने हुए होते हैं जहाँ वह बैठकर भाषा के आदर्श रूप को रिकार्डो, टेप्स एवं रिकार्ड नामक सामग्री द्वारा सुन सकता है। ये रिकार्ड भाषा सम्बन्धी रिकार्ड (Linguaphone records) कहलाते हैं व पर-भाषा शिक्षण के लिये महत्वपूर्ण व आवश्यक हैं। अत्यन्त हर्ष की बात है कि हिन्दी शिक्षण हेतु भी ऐसे रिकार्ड बन चुके हैं व विदेशों में बड़े चाव से लोग हिन्दी पढ़ रहे हैं इन आधुनिकतम यन्त्रों की सहायता से। प्रत्येक प्रकोष्ठ में टेपरिकार्डर दो चैनल युक्त होते हैं। विद्यार्थी के पास शिक्षक द्वारा अंकित टेप की हुई सामग्री होती है। इस मास्टर टेप की सहायता से वह सुनता है, अपने ट्रैक में सामग्री को अंकित व इच्छानुसार मिटा सकता है, पुनः अंकित कर सकता है और इस प्रकार भाषा शीघ्रातिशीघ्र सीख सकते हैं। विशिष्ट रूप से बने टेपरिकाईर व दृश्य-श्रव्य सामग्री उच्चारण के शुद्धिकरण में सहायक हो सकती हैं। इन नई उपलब्धियों द्वारा किसी भी भाषा को वर्षों की अपेक्षा कुछ मास में ही सीखा जा सकता है।

भाषा-प्रयोगशाला ,अनुसंधानात्मक भाषा-प्रयोगशालाप्रक्षेपण,(यंत्र की सहायता) आवश्यक,टेपरिकार्डर दो चैनेल युक्त (मास्टर टेप),शैक्षिक भाषा-प्रयोगशाला,दृश्य-श्रव्य प्रयोगशाला,ध्वनि-विज्ञान प्रयोगशाला,प्रक्षेपण (यन्त्र की सहायता) न लेना,भाषा सम्बन्धी रिकाईस (Linguaphone records)

(14) अनुसंधानात्मक भाषा प्रयोगशाला विभाग का योगदान दृश्य-श्रव्य साधनों की महत्ता के सम्बन्ध में-इन अनुसंधानात्मक भाषा प्रयोगशालाओं में ऐसे कई प्रयोग हो चुके हैं जिनके निष्कर्ष इस प्रकार हैं। प्रोफेसर वेबर ने सिद्ध किया है कि ज्ञानार्जन की 40% संकल्पनायें (Concepts) हम चाक्षुष-अनुभव (Visual-experience) के आधार पर, 25% श्रवण-अनुभव (Auditary experience) के आधार पर, 17% स्पर्श-अनुभव के आधार पर प्राप्त करते हैं। प्रोफेसर पी. जे. रुलोन ने सिद्ध किया है कि दृश्य और चलचित्र सामान्य से 38% अधिक स्मरण में सहायक है। प्रोफेसर चार्टर का कहना है कि चलचित्रों द्वारा छः सप्ताह तक 90% तक याद रहता है।

सारांश

(क) दृश्य-श्रव्य साधनों का महत्व-कम समय में अधिक सीखना सम्भव, कठिन विचार भी इनकी सहायता से बोधगम्य, शिक्षकों व विद्यार्थियों दोनों की दृष्टि से लाभदायक, विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण में स्पष्टता व अनिश्चितता, निर्जीव तथ्यों को भी जीवित करने की सामर्थ्य, विषय-वस्तु को याद रखने में सहायक, पाठ को रोचक बनाने में सहायक, विद्यार्थियों को संलग्न रख सकने में सहायक, सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को समझाने में सहायक (शिक्षक की दृष्टि से लाभदायक, आत्म-शिक्षा में सहायक)।

(ख) दृश्य-श्रव्य साधनों के भेद

(i) दृश्य साधन (नेत्रों से सम्बन्ध) , (ii) श्रव्य साधन (केवल कानों से सम्बन्ध) , (iii) दृश्य-श्रव्य साधन (नेत्रों और कानों दोनों से सम्बन्ध) दृश्य साधन-श्यामपट, मानचित्र, चित्र, चार्ट, प्रतिमूर्ति, सरस्वती यात्रायें, मानचित्र, चित्रदर्शक, चित्र-विस्तारक यन्त्र, कार्टून, सूचना पट। श्रव्य साधन-ग्रामोफोन, रेडियो।

दृश्य-श्रव्य साधन-नाटक, चलचित्र, टेलीविजन, दृश्य-श्रव्य भाषा प्रयोगशाला द्वारा हिन्दी ध्वनियों का शिक्षण, दृश्य-श्रव्य साधनों की महता के सम्बन्ध में अनुसंधानात्मक भाषा प्रयोगशाला विभाग का योगदान।

पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों व प्रकार

पाठ्यक्रम शिक्षा का एक अभिन्न अंग है। यह शिक्षक को बताता है कि उसे कक्षा-विशेष को क्या कितना पढ़ना है। यह जानकारी प्राप्त करके वह अपने सम्पूर्ण वर्ष के कार्य का उचित विभाजन करता है और विभिन्न विषयों को पढ़ाने की उचित तैयारी करता है। पाठ्यक्रम के अभाव में उसका शिक्षण-कार्य उद्देश्यविहीन और अव्यवस्थित हो जायेगा। शिक्षक के समान छात्रों को भी पाठ्यक्रम से लाभ होता है। वे जान जाते हैं कि उन्हें कितने विषय पढ़ने हैं और किन पुस्तकों का प्रयोग करना है। इस जानकारी के अभाव में उनके ज्ञान के अर्जन की गति का एक-सा होना असम्भव है।

पाठ्यक्रम के उद्देश्य (Aims of Curriculum)

1. से विद्यालयों के विषयों और जीवन की विभिन्न क्रियाओं के बीच के अन्तर को समाप्त करना चाहिए।

2. से सब छात्रों के विकास को व्यक्त उत्साहित, विकसित और प्रेरित करना चाहिए। 3. से छात्रों में ईमानदारी, निष्कपटता, मित्रता, सद्इच्छा, निर्णय और सहयोग के गुण का विकास करके उनके चरित्र को उत्तम बनाना चाहिए।

4. इसे ऐसे विद्वान व्यक्तियों का निर्माण करना चाहिए, जो खोज और ज्ञान की सीमाओं का विस्तार कर सकें।

5. इसे छात्रों को धर्म, कलाओं, सामाजिक विज्ञानों, प्राकृतिक विज्ञानों और मानवशास्त्र के साथ घनिष्ठ संपर्क द्वारा मान्यताओं (Values) का निर्माण करने के योग्य बनाना चाहिए।

6. इसे विभिन्न अभिरुचियाँ, योग्यताएँ और क्षमताएँ रखने वाले सब छात्रों को आवश्यकताओं को पूर्ण करना चाहिए।

7. इसे बालकों को लोकतन्त्र के लिए तैयार करना चाहिए। 8. इसे ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए, जिसमें बालक विचार करना सीख सकें और अपने विचार, तर्क तथा निरीक्षण की शक्तियों का विकास कर सकें।

पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त (Principles of Curriculum Construction)

(1) जीवन से सम्बन्धित होने का सिद्धान्त (Principle of Relationship with Life)-पाठ्यक्रम में जिन विषयों को स्थान दिया जाय, उनका वास्तविक जीवन से सम्बन्ध होना चाहिए। ऐसे विषयों का अध्ययन करके ही बालक जीवन में प्रवेश करने के बाद सफलता प्राप्त कर सकेंगे। पुराने ढंग की पाठशालाओं और मकतबों का इसीलिए लोप हो गया, क्योंकि उनमें जो विषय पढ़ाये जाते थे, उनका जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं था।

(2) उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Usefulness)-पाठ्यक्रम निर्माण का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि उसमें जिन विधियों को स्थान दिया जाय, वे बालक के भावी जीवन के लिए उपयोगी होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में नन (Nunn) ने लिखा है-"साधारण मनुष्य सामान्यतः यह चाहता है कि उसके बच्चे केवल ज्ञान के प्रदर्शन के लिए कुछ व्यर्थ की बातें सीखें, परन्तु समग्र रूप में वह यह चाहता है कि उनको वे बातें ही सिखाई जायें, जो भावी जीवन में उनके लिए उपयोगी हों।" (3) रचनात्मक कार्य का सिद्धान्त (Principle of Creative Achievement)-प्रत्येक बालक में किसी-न-किसी क्षेत्र में रचनात्मक कार्य करने की कुछ-न-कुछ योग्यता अवश्य होती है। अतः पाठ्यक्रम को ऐसे अवसर अवश्य देने चाहिए, जिनसे रचनात्मक कार्य की यह योग्यता व्यक्तहो सके। बालक को अपनी रचनात्मक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित व्यक्तहो सके। बालक को अपनी रचनात्मक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। सम्भव है कि प्रारम्भ में उसे अधिक सफलता न मिले, पर यदि उसे उचित निर्देश दिया जायेगा, तो उसकी रचनात्मक शक्तियों का विकास अवश्य होगा।

(4) खेल व कार्य की क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Inter-relation of Play and Work Activities)-पाठ्यक्रम के निर्माण में खेल और कार्य की क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध के सिद्धान्त को स्थान दिया जाना आवश्यक है। सब क्रियाओं का कुछ-न-कुछ प्रयोजन होता है। सामान्यतः खेल की क्रियाओं का प्रयोजन 'आनन्द' समझा जाता है। कार्य की क्रियाओं के बारे में यह बात लागू नहीं होती है। इस प्रकार की क्रिया ज्ञान प्राप्त करने का कार्य है। यह आवश्यक है कि ज्ञान प्राप्त करने की क्रियाओं का खेल के स्तर तक न पहुँचाया जाय, वरन् उनको इतना रुचिकर बनाया जाय, जिससे प्रभावशाली ज्ञान प्राप्त किया जा सके इस सम्बन्ध में क्रो व क्रो (Crow and Crow) का कथन है-"जो लोग सीखने की प्रक्रिया को निर्देशित करते हैं, उनका उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे ज्ञानात्मक क्रियाओं की ऐसी योजना बनायें, जिनमें खेल के दृष्टिकोण को स्थान प्राप्त हो।"

(5) उत्तम आचरण के आदर्शों की प्राप्ति का सिद्धान्त (Principle of Achievement of Wholesome Behaviour Pattern)-यदि बालक बड़े होकर दूसरों के साथ सुखपूर्वक रहना चाहते हैं तो उनको अपने जीवन के प्रारम्भ से ही उचित और आवश्यक आचरण का विकास करना चाहिए। यदि बालक को बड़ा होकर अधिकारों तथा विशेषाधिकारों का उपयोग करना है, तो उसे यह शिक्षा देनी चाहिए कि वह उनका प्रयोग समाज के हित के लिए करें, न कि अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए। प्रायः बालकों को यह सहायता और निर्देशन नहीं मिलता है, जो उनके आचरण को उनके समुदाय के लाभ के लिए उपयुक्तबनाता है। अतः यह आवश्यक है कि बालकों को उत्तम आचरण के आदर्शों को प्राप्त करने की शिक्षा दी जाय, जिससे वे स्वार्थी और व्यक्तिवादी न बनकर अपने व्यवहार से समाज के अन्य सदस्यों के सामने सुन्दर उदाहरण रखें और उनको भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित करें।

(6) जीवन-सम्बन्धी सब क्रियाओं के समावेश का सिद्धान्त (Principle of Inclusion of All Life-Activities)-पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि उसमें से सब क्रियाएँ आ जायें, जो प्रत्येक बालक के स्वास्थ्य, विचार, ज्ञान, कुशलता, मूल्यांकन, अभिव्यक्तिचरित्र और सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्धों को उन्नत बनायें। चूँकि हम लोकतन्त्र के सिद्धान्त को स्वीकर कर चुके हैं, इसलिए पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए, जिससे कि बालक प्रारम्भ से ही लोकतंत्र जीवन के ढंग को धीरे-धीरे ग्रहण करते चले जायें। अतः यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम में ऐसी क्रियाओं को स्थान दिया जाय, जो लोकतन्त्रीय दृष्टिकोण और धारणाओं को उन्नत बनायें।

(7) विकास की सतत् प्रक्रिया का सिद्धान्त (Principle manual Process of Evolution)-किसी भी पाठ्यक्रम का सदैव के लिए निर्माण नहीं किया जा सकता है। उसमें समय के साथ परिवर्तन किये जाने आवश्यक हैं। क्रो व क्रो (Crow and Crow) का कथन है-"वैज्ञानिक प्रगति, नवीन व्यावसायिक अवसर, राष्ट्रों के अधिक विस्तृत अन्तर्सम्बन्ध, प्रगतिशील आदर्श और आकांक्षाएँ यह माँग प्रस्तुत करती हैं कि शिक्षा की सिद्धान्त और व्यवहार का ज्ञान, कुशलता और दृष्टिकोण पर दिये जाने वाले विभिन्न प्रकार के बलों के अनुकूल बनाया जाय।"

(8) अनुभवों की पूर्णता का सिद्धान्त (Principle of the Totality of Experiences)-शिक्षा की आधुनिक विचारधारा के अनुसार पाठ्यक्रम का अर्थ केवल सैद्धांतिक विषयों से नहीं है, जिन्हें परम्परागत ढंग से पढ़ाया जाता है। पाठ्यक्रम में उन सब अनुभवों को भी स्थान दिया जाता है, जिनको बालक विभिन्न क्रियाओं द्वारा प्राप्त करता है। क्रियाएँ विद्यालय, कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, वर्कशॉप, खेल के मैदान तथा शिक्षकों और छात्रों के अगणित अनौपचारिक सम्पर्कों में चालू रहती है। इस प्रकार विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम है।

(9) विविधता और लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Variety and Elasticity) पाठ्यक्रम में विविधता और लचीलेपन की आवश्यकता इसलिए है, जिससे कि छात्रों की रुचियों, विभिन्नताओं, दृष्टिकोणों, मनोवृत्तियों और आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया जा सके। बालकों पर अनुपयुक्त विषयों को लादने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इससे उनमें निराशा की भावना उत्पन्न होती साथ ही उनके सामान्य विकास में बाधा पड़ती है। इसके विपरीत ज्ञान, कुशलता और मूल्यांकन के कुछ ऐसे विस्तृत क्षेत्र हैं, जिनके सम्पर्क में बालकों को लाना चाहिए। अतः पाठ्यक्रम में इनको प्रथम स्थान देना चाहिए, पर इनको

ऐसी मात्रा में रखना चाहिए कि छात्रों की शक्तियों और क्षमताओं से परे न हो जायें। (10) सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Relationship with Community Life)-पाठ्यक्रम का सामुदायिक जीवन से स्पष्ट सम्बन्ध होना चाहिए। पाठ्यक्रम को इस जीवन की महत्वपूर्ण विशेषताओं की व्याख्या करनी चाहिए और बालकों को इसकी कुछ महत्वपूर्ण क्रियाओं के सम्पर्क में लाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि पाठ्यक्रम में उत्पादक कार्यों को महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए, क्योंकि यह कार्य व्यवस्थित मानव-जीवन का आधार है। इसके अतिरिक्तपाठ्यक्रम स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बनाना चाहिए।

(11) अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धान्त (Principle of Training for Leisure)-पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाना चाहिए कि वह छात्रों को कार्य और अवकाश-दोनों के लिए प्रशिक्षित करे। इसलिए अध्ययन के विषयों के साथ-साथ, पाठ्यक्रम में अन्य क्रियाओं को भी स्थान देना चाहिए; जैसे-खेलकूद, सामाजिक और सौन्दर्यात्मक क्रियाएँ आदि। ये क्रियाएँ बालकों को अपने अवकाश का सदुपयोग करने के लिए प्रशिक्षित करेंगी।

(12) विषयों के पारस्परिक सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Inter-relation ofSubjects)-पाठ्यक्रम को अनेक सम्बन्धित विषयों में खण्डित नहीं करना चाहिए। ऐसा पाठ्यक्रम ' प्रभावहीन हो जाता है। सभी विषयों का एक-दूसरे से सम्बन्ध होना चाहिए और सभी का जीवन से सम्बन्ध होना चाहिए।

. पाठ्यक्रम के स्वरूप

पाठ्यक्रम में नवाचार (Innovations in Curriculum)

1960 ई. के बाद में पाठ्यक्रम विकास पर पुनर्विचार किया गया। इस क्षेत्र में ब्रूनर, हर्ड आदि विचारकों ने उल्लेखनीय कार्य किया। हर्ड (1969) ने पाठ्यक्रम में नवाचारों (Innovations) को इन शब्दों में अभिव्यक्तकिया है

1. पाठ्यक्रम का निर्माण कार्य स्थानीय स्तर पर न किया जाय वरन् यह कार्य राष्ट्रीय स्तर पर हो।

2. विषय-वस्तु के चयन के लिए अवधारणा योजना को आधार बनाया जाय।

3. विषय-वस्तु का चयन विशेषज्ञों अथवा अन्वेषकों द्वारा किया जाय।

4. शिक्षण छात्र-केन्द्रित हो तथा सीखने के लिए प्रयोगशाला का प्रयोग किया जाय।

(9 विषय-वस्तु का चयन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में होना चाहिए।

(i) भिन्न-भिन्न विषयों का एकीकरण होना चाहिए। (ii) पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों के सामाजिक, भावात्मक तथा आध्यात्मिक पक्षों के विकास पर बल दिया जाना चाहिए।

(iv) विद्यालयीय पाठ्यक्रम वास्तविकता लिये हो ।

उपर्युक्तनवाचारों द्वारा पाठ्यक्रम में अनेक परिवर्तन सम्भव बन पड़े हैं तथा सीखने तथा शिक्षण की विधियों में नवीन परिवर्तनों को स्थान मिल रहा है। साथ ही पाठ्यक्रम मॉडल बनाने का प्रयास किया जा रहा है जिससे शिक्षा प्रभावी बन सके।

पाठ्यक्रम के प्रकार (Types of Curriculum)

सेलर व विलियम ने पाठ्यक्रम आयोजन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है-"पाठ्यक्रम आयोजन वह ढाँचा या संरचना है

जिसका विद्यालय में शैक्षिक अनुभव को चुनने, नियोजित करने तथा कार्यान्वित करने में प्रयोग किया जाता है। अतः यह आयोजन वह योजना है जिसका सीखने की क्रियाओं को प्रदान करने के लिए शिक्षक द्वारा अनुसरण किया जाता है। अतः हम संक्षेप में कह सकते हैं कि आयोजन वह ढंग जिसको अपनाकर सीखने के अनुभवों को संगठित तथा निर्मित किया जाता है। "Curriculum design is the pattern or framework or structure organization used in selecting, planning and carrying forward education experience in the school. Design is thus the plan the teachers follow in providing learning activities. J. Galen Saylor and M. A. William जेम्स एम. ली का कथन है कि आयोजन के दो प्रमुख भेद होते हैं। वे इस प्रकार हैं

(अ) अंशों में विभाजित आयोजन (Fragmented Design) (ब) एकीकृत आयोजन (Unified Design)

(अ) अंशों में विभाजित आयोजन-इसमें प्रत्येक विषय को पृथक् रूप से पढ़ाया जाता है। साथ ही विषयों को परिवर्तनीय ढंग से पढ़ाया जाता है। इसके अनुसार शिक्षण पूर्णतः सम्पूर्ण कक्षा समूह के रूप में किया जाता है। इसमें निर्देशात्मक प्रक्रिया (Instructional Procedure) दृढ़ और परम्परागत होती है।

(ब) एकीकृत आयोजन-इसमें विषय-वस्तु की पृथक्ता को समाप्त करके अध्ययन की जाने वाली समस्या से विषयों को एकीकृत किया जाता है। इसमें शिक्षक-छात्र की सहयोगी क्रियाओं, नियोजन आदि को स्थान प्राप्त है। इसमें सम्पूर्ण कक्षा समूहों के अतिरिक्त वैयक्तिक अध्ययन तथा छोटे-छोटे समूहों के कार्यों को स्थान प्रदान किया जाता है। इसमें निर्देशात्मक प्रक्रिया लचीली होती है। उक्तदोनों प्रकार के आयोजन के आधार पर पाठ्यक्रम के निम्न प्रकार निर्धारित किये गये हैं

1. विषय-केन्द्रित पाठ्यक्रम (Subject-central Curriculum) 2. शास्त्रीय पाठ्यक्रम (Classical Curriculum)

3. छात्र-केन्द्रित या बाल-केन्द्रित पाठ्यक्रम (Student-centred or Child-centred Curriculum) 4. जीवन का स्थायी स्थितियों पर आधारित पाठ्यक्रम (Persistent Life Situations Curriculum)

5. कोर पाठ्यक्रम (Core Curriculum) 6. क्रिया-प्रधान पाठ्यक्रम (Activity-centred Curriculum)

उपर्युक्त पाठ्यक्रम के प्रकारों में प्रथम दो खण्डित आयोजन पर आधारित हैं अन्तिम चार एकीकृत आयोजन पर। इनका पृथक् -पृथक् विवेचन नीचे किया जा रहा है

(1) विषय-केन्द्रित पाठ्यक्रम-विषय-केन्द्रित पाठ्यक्रम में विषय को आधार मानकर पाठ्यक्रम को नियोजित किया जाता है। विषय-केन्द्रित पाठ्यक्रम का सूत्रपात प्राचीन ग्रीक तथा रोम के विद्यर्थियों में हुआ। जेम्स एम. ली. का कथन है-"विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम निश्चित बौद्धिक विशिष्टताओं की एक सूची है जिसका योग ययार्यता का समग्र चित्र प्रस्तुत करने का दावा करता है। इसमें छात्रों के लिए क्या अर्थपूर्ण है या वे क्या सीखना चाहते हैं ? की अपेक्षा निर्धारित विषय वस्तु पर अधिकार प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया जाता है।

(2) शास्त्रीय पाठ्यक्रम-यह शिक्षा के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण रखता है। इसके द्वारा आध्यात्मिक तथा नैतिक जीवन के विकास पर बल दिया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम का सूत्रपात प्राचीन यूनान तथा भारत के विद्यालयों में हुआ। इसमें शास्त्रीय भाषाओं, दर्शन, गणित तथा ज्योतिषशास्त्र पर अधिक बल दिया जाता है। डॉ जैड के. सतरंजीवाले ने लिखा है-"यदि छात्रों को सूचनाएँ प्रदान करना ही हमारा ध्येय है तो इस प्रकार के पाठ्यक्रम का अधिकांश भाग उपयुक्त माना जा सकता है। प्रारम्भ में यह आशा की जाती थी कि यदि बालक विषय वस्तु में निहित सूचनाओं को ग्रहण करके उन पर आधिक्य स्थापित

कर लें, तो उसमें कुछ प्रमुख आदतों तथा कुशलताओं का विकास होगा।

(3) छात्र-केन्द्रित या बाल-केन्द्रित पाठ्यक्रम-आधुनिक युग में शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है कि विषय-केन्द्रित शिक्षा का स्थान बाल-केन्द्रित शिक्षा ने लिया है। अब पाठ्यक्रम का आयोजन बालक को केन्द्र बनाकर किया जाता है। यह पाठ्यक्रम प्रयोगवादी विचारधारा (Philosophy of Experimentalism) पर आधारित है। इस विचारधारा के प्रमुख प्रतिपादक फ्लाम (Flam) का मत है-"अनुभव किसी व्यक्ति के वातावरण की भाँति स्थिर नहीं है। इस कारण इस पाठ्यक्रम में पूर्व नियोजित विषय-वस्तु को आधार न बनाकर छात्र की रुचियों एवं आवश्यकताओं को केन्द्र-बिन्दु बनाया जाता है।" जेम्स एम. ली ने लिखा है-"छात्र केन्द्रित पाठ्यक्रम वह है जो पूर्णतः और समग्र रूप से सीखने वाले में निहित है।" इस प्रकार के पाठ्यक्रम में छात्र की परिवर्तित आवश्यकताओं, अभिप्रायों, संवेगों आदि को आधार बनाया जाता है। शिक्षा-जगत् इस प्रकार के पाठ्यक्रम के लिए जॉन डीवी के 'लेबोरेटरी स्कूल (Laboratory School) का ऋणी है। यह पाठ्यक्रम क्रियात्मक (Functional) होता है जो सीखने वालों को साभिप्राय उपयुक्त अनुभव (Purposeful Learning) प्रदान करता है। यह छात्रों पर सीखने का उत्तरदायित्व डालता है।

(4) जीवन की स्थायी स्थितियों पर आधारित पाठ्यक्रम-जेम्स एम. ली ने लिखा है-"जीवन की स्थायी स्थितियों पर आधारित पाठ्यक्रम उन जारी रहने वाली स्थितियों में निहित है जिनमें प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अपने विकास के प्रत्येक स्तर पर समाज में पाता है।" "The persistent life situations curriculum is rooted in those continuing situation in which every individual finds himself in a particular society at every stage of his development. James M. Lee जेम्स एम. ली ने जीवन की इन स्थितियों को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया है:-

(अ) वैयक्तिक क्षमताओं (Individual Capacities) के विकास से सम्बन्धित स्थितियाँ। (ब) सामाजिक साझेदारी (Social Participation) के विकास से सम्बन्धित स्थितियाँ। (स) वातावरण से सम्बन्धित कारकों तथा शक्तियों के प्रति प्रतिक्रिया करने की योग्यता से सम्बन्धित स्थितियाँ। प्रथम प्रकार की स्थितियों के अन्तर्गत स्वास्थ्य, बौद्धिक शक्ति सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति एवं मूल्यांकन (Appreciation) तथा नैतिक शक्तियों के विकास से सम्बन्धित स्थितियों को स्थान दिया जाता है। द्वितीय प्रकार की स्थितियों में व्यक्ति व्यक्ति के सम्बन्धों, सामूहिक सम्बन्धों तथा अन्तर-सामूहिक सम्बन्धों के विकास से सम्बन्धित स्थितियों को स्थान मिलता है। तीसरे प्रकार की स्थितियों के अन्तर्गत प्राकृतिक घटनाएँ, औद्योगिक साधन तथा आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थितियां निहित हैं। ये समस्या स्थितियाँ पाठ्यक्रम के आयोजन के लिए मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती हैं।

इस प्रकार के पाठ्यक्रम का सूत्रपात ए. बी. स्ट्रेटमेयर (A. B. Stratemeyer) के विचारों से हुआ। यह पाठ्यक्रम छात्रों की तात्कालिक आवश्यकताओं एवं हितों पर आधारित है। ये आवश्यकताएँ एवं हित, जीवन की स्थायी स्थितियों के क्षेत्र में निहित हैं। अतः इस प्रकार का पाठ्यक्रम कुछ सीमा तक बाल-केन्द्रित पाठ्यक्रम से समानता रखता है।

(5) कोर पाठ्यक्रम-कोर पाठ्यक्रम विषय केन्द्रित और बाल-केन्द्रित पाठ्यक्रमों के विरुद्ध प्रक्रिया के फलस्वरूप विकसित हुआ है। इसका प्रचलन अमेरिका के विद्यालयों में बहुत अधिक है। इसका प्रमुख कारण आधुनिक युग की सामाजिक अव्यवस्था है। यह पाठ्यक्रम इस बात पर बल देता है कि विद्यालय अधिक सामाजिक दायित्वों को ग्रहण करें और सामाजिक रूप से कुशल व्यक्तियों का निर्माण करें। हम अपने कथन की पुष्टि में निम्नलिखित विद्वानों के विचारों का उल्लेख कर सकते हैं-

(i) कैसबैल-"कोर पाठ्यक्रम छात्र की महत्वपूर्ण व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं में "Core curriculum is rooted in a student's significant personal and social निहित है।

(ii) स्मिय, स्टेनलेव शोर्स-"कोर पाठ्यक्रम, सामाजिक मान्यताओं तथा प्रभावकारी सामाजिकजीवनयापन पर बल देता है।

Core curriculum focuse on social values and effective social living." -Smith, Stanley and Shores

(iii) स्पीयर्स-"पाठ्यक्रम छात्रों के सामान्य विकास पर केन्द्रित है ।

(6) क्रिया-प्रधान पाठ्यक्रम-क्रिया-प्रधान पाठ्यक्रम क्रिया या कार्य को आधार बनाता है। इस पाठ्यक्रम के लिए शिक्षा जगत डॉ. जॉन (Dr. John Dewey) का ऋणी है। यह पाठ्यक्रम इसलिए भी लोकप्रिय बना, क्योंकि यह बालकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखता है। किलपैट्रिक ने पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में डीवी के विचारों का उल्लेख करते हुए लिखा है- "शिक्षा खण्डित एवं निर्जीव, पाठ्यक्रम जिसमें प्रत्येक शैक्षिक स्तर के लिए विशेष निहित हों, से प्रदान नहीं की जा सकती है। पाठ्यक्रम में वास्तविक छात्रों, जो वास्तविक समस्याओं के समाधान में सलंग्न हैं, की एकीकृत क्रियाएँ निहित होनी चाहिए। समाधान के लिए उनकी खोज उनको कुछ परम्परा विषयों की ओर अग्रसर करेंगी, परन्तु वे जीवन की क्रियाओं से स्वतन्त्र होकर ज्ञान पृथक् समूहों के रूप में अध्ययन नहीं किये जायेंगे। अतः विद्यालय में चलने वाली प्रत्येक अर्थपूर्ण क्रिया पाठ्यक्रम का निर्माण करती है।" डीवी इस बात में विश्वास नहीं करता है कि ज्ञान क्रिया का मार्गदर्शक है, वरन् उसके अनुसार ज्ञान क्रिया का परिणाम है। उसका कथन है कि क्रिया का कार्य ज्ञान के स्रोत हैं। क्रिया अनुभव से पूर्व होती है। अतः उसके अनुसार अनुभव, ज्ञान या सीखना क्रिया के परिणाम हैं। इस प्रकार डीवी ज्ञान एवं अनुभव में कोई विशेष अन्तर नहीं मानता। उसका कथन है कि ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है और अनुभव क्रिया द्वारा उत्पन्न होता है। इस कारण उसने इस पाठ्यक्रम को अनुभव-प्रधान पाठ्यक्रम (Experience-centred Curriculum) के नाम से भी पुकारा है। उपसंहार अन्त में, हम एडरियन एम. ड्यू पुलिस के शब्दों में कह सकते हैं-"विद्यालय एक लोकतन्त्रीय समुदाय है जिसमें छात्र कम-से-कम प्रतिदिन सात घण्टे रहते हैं। इसलिए पाठ्यक्रम जीवनयापन का एक अनुभव होना चाहिए, न कि पूर्णतया वयस्क जीवन के लिए तैयारी । कुछ लोग पाठ्यक्रम की तुलना, दौड़ के मैदान से करते हैं। उनका कथन है-पाठ्यक्रम वह दौड़ का मैदान है, जिस पर विद्यार्थीगण दौड़ते हैं, ताकि शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। अमेरिका के राबर्ट यूलिच का कथन है "विद्यार्थी दौड़ते हैं" का अर्थ है-विद्यार्थी अनुकरण करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि वे शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त कर ही लें। कुछ लोगों का कथन है कि यदि शिक्षा दौड़ है, तो शिक्षा के उद्देश्य लक्ष्य या गन्तव्य स्थान है। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम वह मार्ग है, जिस पर चलकर व्यक्ति अपने लक्ष्य या गन्तव्य स्थान पर पहुँच सकता है।

अन्य कई लोगों का कथन है कि अध्यापक मूर्तिकार है, विद्यालय मूर्ति निर्माण का स्थान । पाठ्यक्रम वह उपकरण है, जिसकी सहायता से अध्यापक मूर्ति घड़ता है।

पाठ्यक्रम का स्वरूप

पाठ्यक्रम के दो रूप हैं- (i) संकुचित, (ii) व्यापक।

संकुचित रूप में पाठ्यक्रम अध्ययन का वह क्रम है, जिसमें विभिन्न ज्ञानों और कुशलताओं का संग्रह पुस्तकों के द्वारा होता है। व्यापक रूप में उन सभी अनुभवों, क्रियाओं और सामाजिक जीवन की गतिविधियों को पाठ्यक्रम कहते हैं, जिनमें बालक सक्रिय रूप से भाग लेता है।

(i) फ्रोबेल-"पाठ्यक्रम समस्त मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान तथा अनुभव का सारांश है।" (ii) हॉर्न-"छात्रों को जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह पाठ्यक्रम है। वह सीखने का क्रिया और शान्तिपूर्ण अध्ययन से कुछ अधिक है।" (iii) क्रो तथा क्रो-"पाठ्यक्रम में छात्रों के विद्यालय के भीतर या बाहर के सभी अनुभव आ जाते हैं।

(iv) मुदालियर (माध्यमिक शिक्षा) आयोग-पाठ्यक्रम से अभिप्राय है-"अनुभवों की वह समग्रता, जिन्हें विद्यार्थी कक्षाओं में, पुस्तकालय में, प्रयोगशाला में, कर्मशाला में, क्रीडा-स्थल पर तथा अध्यापकों और विद्यार्थियों के अनगिनत औपचारिक सम्पर्कों के द्वारा प्राप्त करता है। इस प्रकार विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम है। पाठ्यक्रम छात्रों को समायोजित व्यक्तित्व के विकास में सहायता प्रदान करना है।

पाठ्यक्रम का महत्व

इस सम्बन्ध में ये बातें कही जा सकती हैं:-

(i) इसके द्वारा विद्यालयों में एक स्तर तथा एकरूपता स्थापित कर सकते हैं। (ii) छात्र मुख्य और गौण विषयों का चयन कर सकते हैं।

(ii) उन्हें अपने लक्ष्य का पता होता है। उसके अनुसार वे अपने समय और शक्ति को नियोजित कर सकते हैं।

(iv) परीक्षक को प्रश्न-पत्र बनाने और मूल्यांकन करने में सुविधा होती है। (v) लेखक पाठ्यक्रम के अनुसार पाठ्य-पुस्तकों की रचना कर सकते हैं। (vi) पाठ्यक्रम द्वारा पूर्वजों के अनुभवों का लाभ, विद्यार्थियों को सहज में ही प्राप्त होसकता है।

प्रचलित पाठ्यक्रम की सीमाएँ

(i) इसमें विषयों की अधिकता है। छात्र निर्धारित अवधि में उनके साथ न्याय नहीं कर सकते। (ii) विषयों को समन्वित रूप से नहीं पढ़ाया जा सकता। (ii) यह संकुचित और एकांकी है। इसका उद्देश्य है केवल छात्रों की विश्वविद्यालय शिक्षा के तैयार करना। (iv) केवल शाब्दिक और सैद्धान्तिक पक्ष पर बल दिया जाता है।

(v) यह विभिन्न उद्योगों और व्यवसायों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता। (vi) इसमें उन तथ्यों की कमी है, जो विद्यार्थियों में राष्ट्र-भक्तिका संचार कर सके। (vi)इसमें छात्र-छात्राओं में पाए जाने वाले व्यक्तिगत भेदों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

पाठ्यक्रम और भाषा

पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों का आयोजन किया जाता है। प्रत्येक विषय का अपना एक अलग महत्व होता है। नीचे की पंक्तियों में, भाषा के महत्व की संक्षिप्त चर्चा की जाएगी:-

1.मातृभाषा

पाठ्यक्रम के विषयों में सबसे अधिक महत्व मातृभाषा का होता है। जन्म के कुछ समय बाद ही, प्रत्येक शिशु अपनी माँ के दूध के साथ मातृभाषा सीखता है। अपनी माँ से वह अगाध स्नेह करता है। माँ चाहे जितनी भी मारे, फिर भी वह माँ की गोद में अवश्य जाएगा। ऐसी स्थिति में उस व्यक्तिकी भाषा को ग्रहण करना, जिससे वह अथाह स्नेह करता है, स्वाभाविक ही है किसी भी व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसकी मातृभाषा में समाया रहता है। बाद में वह चाहे, तो कितनी भी और भाषाएँ क्यों न सीख ले, परन्तु उसके चिन्तन की भाषा तो मातृभाषा ही होती है जितनी सुस्पष्ट और प्रभावशाली अभिव्यक्ति वह अपनी मातृभाषा में कर सकता है, उतनी किसी अन्य भाषा में नहीं। इसी बात को सामने रखते हुए, विश्व के सभी शिक्षाविदों और मनोवैज्ञानिकों का कथन है, बालक की शिक्षा, उसकी मातृभाषा में ही होनी चाहिए। आज भारतवर्ष में शिक्षा का जो स्तर गिरा हुआ है, उसका प्रधान कारण यहाँ है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा न होकर, विदेशी भाषा है। विश्व के सभी प्रगतिशील देशों में भारत ही एक ऐसा अनोखा देश है जहाँ मातृभाषा की उपेक्षा की जा रही है। जब कभी भी मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की बात आयी है, तभी मानसिक दासता से ग्रसित, अंग्रेजी-भक्तमें तरह-तरह के रोड़े अटकानेलगते हैं।

2.क्षेत्रीय भाषा

किसी भीप्रदेश में विविध प्रकार के समुदाय रहते हैं। उनकी मातृभाषा अलग-अलग होती है। उदाहरणस्वरूप महाराष्ट्र में रहने वाले मूल निवासियों की मातृभाषा मराठी है। परन्तु क्षेत्र से आए लोगों की मातृभाषा बंगला या गुजराती आदि हो सकती है। वहाँ क्षेत्रीय भाषा बंगला या गुजराती होगी। वहाँ हिन्दी क्षेत्रीय भाषा भी होगी और राष्ट्रभाषा भी। किसी भी प्रदेश में क्षेत्रीय भाषा के शिक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

3. हिन्दी या राष्ट्रभाषा

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है और सरकारी या राजभाषा भी है। राष्ट्रभाषा इसलिए है कि यह देश के अधिकांश भागों में बोली जाने वाली या समझी जाने वाली भाषा है। 1950 के भारतीय संविधान में इसे राजभाषा या सरकारी भाषा का पद दिया गया। परन्तु राभाषा या सरकारी भाषा का पद प्राप्त करने से बहुत पहले ही, यह राष्ट्रभाषा के पद पर काम कर रही है। आज से लगभग 125 वर्ष पूर्व महर्षि सरस्वती ने भली-भाँति अनुभव कर लिया था कि यदि देश में आर्य समाज का प्रचार करना है, तो वह हिन्दी भाषा के द्वारा ही हो सकता है। इस भाषा को उन्होंने "आर्य भाषा" कहा और अपने समस्त ग्रन्थ हिन्दी भाषा में ही लिखे। महात्मा गांधी ने भी भारत का क्षमण करते हुए, इसी बात का प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया था। इसीलिए उन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यक्रमों में भाग लिया और "दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की। काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के अवसर पर "राष्ट्र भाषा, हिन्दी सम्मेलन भी आयोजित होते थे। एक बार ऐसे एक सम्मेलन में लोकमान्य तिलक एक घण्टा विलम्ब से आए। इस पर महात्मा गांधी ने कहा-अब देश की स्वतन्त्रता भी एक घण्टा देरी से प्राप्त होगी।

4. संस्कृत (प्राचीन Classical भाषा):-

संस्कृत भारतवर्ष की सांस्कृतिक भाषा है। इसलिए पाठ्यक्रम में यह विषय अनिवार्य होना चाहिए। भारतवर्ष की सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थ-चारों वेद, दो दर्शनशास्त्र उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, स्मृतियों, पुराण, रामायण, महाभारत, भास, कालिदास, भवभूति आदि सभी की रचनाएँ संस्कृत में ही हैं। सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से, यह आवश्यक है कि भारतवर्ष में सभी स्थानों पर विद्यार्थीगण संस्कृत का शिक्षा प्राप्त करें। भारतवर्ष की जितनी भी प्रादेशिक भाषाएँ हैं, वे सब संस्कृत से ही उपजी हैं। क्या कन्नड़, क्या मलयाली, क्या मराठी, क्या बंगला, क्या उड़िया, क्या असमिया, क्या नेपाली, क्या हिन्दी-कोई भी भारतीय भाषा क्यों न लें, उसमें 80 प्रतिशत से अधिक शब्द संस्कृत के मिलेंगे। इस दृष्टि से संस्कृत भारतवर्ष की एकता का प्रतीक है। ऐसी स्थिति में भारतवर्ष में भावात्मक एकता की दृष्टि से संस्कृत भाषा का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए।

5. विदेशी भाषा:-

जापानी, चीनी, जर्मनी, फ्रांसीसी, रूसी, स्पेनिश, अंग्रेजी आदि की गणना, विदेशी भाषाओं में की जाती है। भारतवर्ष में अंग्रेजों का राज्य लम्बे समय तक रहा। अतः जब तक अंग्रेजों का राज्य रहा, तब तक सभी स्तरों पर अंग्रेजी अनिवार्य भाषा थी। स्वाधीनता के बाद उच्च माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या हिन्दी हो गया। इस समय विश्वविद्यालय स्तर पर अंग्रेजी और हिन्दी या मातृभाषा दोनों ही माध्यम है। परन्तु विषय की दृष्टि से अंग्रेजी की अनिवार्यता अभी तक बनी हुई है। अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों में, अधिकांश विद्यार्थी अंग्रेजी में ही अनुत्तीर्ण होते हैं। राष्ट्रीय सम्मान की दृष्टि से अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त कर देनी चाहिए।

जितने भी उन्नत राष्ट्र हैं, कहीं भी विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जर्मनी, फ्रांस, आदि सभी देशों में चाहे तकनीकी शिक्षा हो चाहे वैज्ञानिक शिक्षा, चाहे डॉक्टरी शिक्षा, चाहे साहित्यिक शिक्षा हो, शिक्षा का माध्यम वहाँ की भाषा ही होती है। भारतवर्ष के जो विद्यार्थी उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए उन देशों में जाते हैं, उन्हें वहाँ की भाषा सीखनी होती है। जो लोग अंग्रेजी को अपनाना चाहें, वे अपना सकते हैं परन्तु शिक्षा का माध्यम तो भारतीय भाषाएँ ही होनी चाहिए। जितनी जल्दी हम इस मानसिक दासता से मुक्ति प्राप्त कर लें, उतना ही अच्छा होगा।

पाठ्य पुस्तक निर्माण के आधार

पाठ्य-वस्तु

बालकों की भिन्न-भिन्न अवस्था के अनुसार पाठ्य-पुस्तकों की पाठ्य-वस्तु इस प्रकार की होनी चाहिए:-

1. प्राथमिक अवस्था:- इस अवस्था में घरेलू जीवन सम्बन्धी कहानियाँ तथा छोटे-छोटे वर्णनात्मक लेख हों तथा कविताएँ हों। कहानियाँ अत्यन्त सरल होनी चाहिए तथा उनमें गतिशीलता तथा अभिनयशीलता सम्बन्धी गुण होने चाहिए। इस अवस्था की पाठ्य-पुस्तकों में पर्याप्त मात्रा में चित्र हों, प्रत्येक पाठ के पश्चात् अध्यापक के लिए टिप्पणियाँ हों तथा पाठ के अन्त में बालकों के अभ्यासार्थ प्रश्न दिये जायें।

2. माध्यमिक अवस्था इस अवस्था में धीरे-धीरे बालों को साहित्य की विभिन्न धाराओं का परिचय कराया जायेगा।

इसलिए पाठ्य-पुस्तकों में वार्तालाप, छोटे-छोटे एकांकी तथा दूसरे नाटक, छोटी-छोटी कहानियाँ, संक्षिप्त वर्णनात्मक लेख और पत्रादि रहेंगे। पाठ्य-पुस्तकों में चित्र तो रहेंगे, परन्तु संख्या अधिक नहीं। प्रत्येक पाठ के अन्त में अभ्यास के लिए शब्द रखे जायेंगे। इस अवस्था में व्याकरण का आरम्भ होता है, इसलिए व्याकरण-सम्बन्धी कुछ प्रश्न भी रखे जायेंगे। पाठ्य-पुस्तक के आधार पर निबन्ध-लेखन का भी सुझाव दिया जायेगा।

3. उच्च माध्यमिक अवस्था:-इस अवस्था में विद्यार्थियों को मूल साहित्य से परिचित कराया जायेगा। इसलिए पाठ्य-पुस्तकों में प्रसिद्ध लेखकों की मूल रचनाएँ रहेंगी। इस अवस्था की पाठ्य-पुस्तकों में साहित्य की सभी धाराओं का समावेश होना चाहिए; जैसे-भावात्मक तथा कलात्मक कविताएँ और कहानियाँ, विचारात्मक निबन्ध, नाटक, यात्रा-वर्णन इत्यादि।

प्राथमिक कक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकें अथवा प्रशासनिक पाठ्य-पुस्तक लेखन समिति, 1992 मार्गदर्शक सूत्र इस समिति ने प्राथमिक कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों के लेखन की दृष्टि से ये मार्गदर्शक सूत्र प्रस्तुत किये

(1) पाठ्य-पुस्तकों में पाठ्य-वस्तु का स्वरूप यह होना चाहिए (i) राष्ट्रीय उत्सव सम्बन्धी पाठ,

(ii) स्वास्थ्य सम्बन्धी पाठ,(ii) खेल सम्बन्धी पाठ,

(iv) पर्यावरण सम्बन्धी पाठ, (v) स्वतन्त्रता आन्दोलन सम्बन्धी पाठ,

(vi) देश सम्बन्धी पाठ,(vi) दर्शनीय स्थल विषयक पाठ,

(viii) ग्राम्य जीवन विषयक पाठ, (ix) नागरिक जीवन सम्बन्धी पाठ।

(2) राष्ट्रीय उत्सवों वाले पाठ सभी जातियों से सम्बन्धित हों।

(3) स्वतन्त्रता आन्दोलन में सभी वर्गों के योगदान को प्रदर्शित किया जाये। (4) दर्शनीय स्थल भिन्न-भिन्न प्रदेशों से सम्बन्धित हों । (5) मध्यकालीन हिन्दी साहित्य सम्बन्धी एक-दो पाठ हों।

(6) आधुनिक हिन्दी साहित्य सम्बन्धी कुछ पाठ हों। प्रचलित पाठ्य-पुस्तकें-उनके दोष और निराकरण गई है

समिति द्वारा प्रचलित पाठ्य-पुस्तकों के दोषों और उनके निराकरण के सम्बन्ध में ये बातें कही

(1) पाठ्य-पुस्तकों का परिमाण अधिक होता है। उनकी पृष्ठ-संख्या को कम करके उनके परिमाण को कम किया जाये। (2) इन पुस्तकों की विषय-वस्तु प्राथमिक कक्षाओं के स्तरानुसार नहीं होती। अतः पाठों को नयेसिरे से लिखवाकर उन्हें स्तरानुसार किया जाये।

(3) ये पाठ्य-पुस्तक का ज्ञान न देकर विचित्र विषयों का ज्ञान कराती हैं। इनमें इस प्रकार संशोधन किया जाये कि बालक का शब्द-भण्डार बढ़े, वे विभिन्न प्रकार की वाक्य-रचना से परिचित हों तथा अनौपचारिक रूप से व्याकरण के नियमों का ज्ञान प्राप्त करें।

(4) पाठ्य-पुस्तक के पाठ प्रायः नीरस होते हैं। अतः पाठ्य-पुस्तक में ऐसे पाठों का समावेश किया जाये, तो बालकों की दृष्टि से रोचक हों।

(5) ऐसी पुस्तकों के पाों का सम्बन्ध बालक के व्यावहारिक जीवन के साथ नहीं होता। अतएव इनमें ऐसे पाठ सम्मिलित किये जायें, जिनके विषय बालक की अनुभव-परिधि में आते हों।

(6) अक्षर छोटे-छोटे होते हैं और सुन्दर-चित्रों का अभाव होता है। इसलिए इन पुस्तकों के अक्षर सुडौल और बड़े हों तथा उनमें सुन्दर और आकर्षक चित्रों का समावेश हो। (7) पाठ्य-पुस्तकों में प्रायः अगणित मुद्रण दोष पाये जाते हैं। अतः इस विषय में जागरूकता रखी जाये, ताकि मुद्रण सम्बन्धी अशुद्धियाँ न आने पायें।

माध्यमिक विद्यालय के लिए पाठ्य-पुस्तकें और 'मुदालियर आयोग 'मुदालियर आयोग' ने भी अपने प्रतिवेदन में माध्यमिक विद्यालयों की पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया है। उसके निष्कर्ष और सुझाव नीचे दिये जा रहे हैं

वर्तमान पाठ्य-पुस्तकों के दोष

पाठशालाओं और महाविद्यालयों के अध्यापकों ने आयोग को जो सूचना दी, उसके आधार परवर्तमान पाठ्य-पुस्तकों में निम्नलिखित दोष पाये जाते हैं

1. कुछ पाठ्य-पुस्तकों का स्तर, श्रेणी-विशेष के स्तर से बहुत ऊँचा होता है। 2. कुछ पाठ्य-पुस्तकें श्रेणी-विशेष के बालकों के स्तर को देखते हुए बहुत सुगम होती हैं।

3. प्रायः पाठ्य-पुस्तकों की भाषा दोषपूर्ण होती है।

4. पाठ्य-पुस्तकों में विषय का निर्वाह ठीक प्रकार से नहीं किया जाता। 5. केन्द्रीय प्रशासन तथा राज्यों की पाठ्य-पुस्तक समितियाँ इस ओर विशेष ध्यान नहीं देती।

6. पाठ्य-पुस्तकों में प्रयोग किया जाने वाला कागज, सामान्य रूप से घटिया होता है। 7. पाठ्य-पुस्तकों का मुद्रण असन्तोषजनक होता है।

8. पाठ्य-पुस्तकों में मुद्रण सम्बन्धी कई अशुद्धियाँ पाई जाती हैं।

मुदालियर आयोग' के सुझाव

उपर्युक्त दोषों को देखते हुए 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' ने पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध मेंअग्रलिखित सुझाव दिये हैं।

(क) पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन

(i) पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन वाणिज्य-प्रशासकों के हाथों में न छोड़ा जाये, अपितु उन्हें राज्यों की पाठ्य-पुस्तक समितियों की संरक्षणता में प्रकाशित किया जाना चाहिए। (ii) प्रत्येक श्रेणी तथा विषय के लिए पर्याप्त संख्या में पाठ्य-पुस्तकें अनुमोदित की जायें और उपयुक्त पुस्तकों का चयन, सम्बद्ध संस्थाओं पर छोड़ दिया जाये।

(iii) ऐसी कोई पुस्तक अनुमोदित न की जाये जो जन-समुदाय के किसी भाग की धार्मिक भावनाओं पर आघात करती हो अथवा किसी सामाजिक प्रथा को अवमान में लाती हो। (iv) पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा किसी विशेष राजनीतिक सिद्धांतों का प्रचार नहीं होना चाहिए। (v) पाठ्य-पुस्तकें ऐसी हों, जिनके द्वारा किशोरों में सामाजिक तथा राष्ट्रीय प्रेम बढ़े और वेअच्छे नागरिक बन सकें।

(ख) पाठ्य-पुस्तकों के चित्र

(i) केन्द्रीय सरकार को एक नवीन संस्था स्थापित करनी चाहिए, जिसमें होनहार कलाकारों को पुस्तक-चित्रों की प्रविधियों में प्रशिक्षित किया जा सके।

(ii) केन्द्रीय प्रशासन को, और यदि सम्भव हो तो राज्य सरकारों को भी अच्छे चित्रों के ऐसे संग्रहालय खोलने चाहिए, जिनमें से आवश्यकता पड़ने पर पाठ्य-पुस्तक समितियों और प्रकाशकोंको चित्र भेजे जा सकें। (iii) पाठ्य-पुस्तक समितियों को विभिन्न श्रेणियों के लिए कागज, मुद्रण (Type), चित्रों तथा पुस्तकों के आकार आदि के सम्बन्ध में निश्चित तथा स्पष्ट मापदण्ड निर्धारित कर देना चाहिए और ऐसी पाठ्य-पुस्तकों को अस्वीकार कर देना चाहिए जो निर्दिष्ट मापदण्डों के अनुसार न हों।

(ग) उच्च-शक्ति समिति का संगठन

आयोग के मतानुसार, प्रत्येक राज्य में एक उच्च-शक्ति समिति का निर्माण किया जाये। समिति में नीचे लिखे सात सदस्य होने चाहिए:-

(i) राज्य के उच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश। (ii) राज्य के लोक सेवा आयोग का एक सदस्य। (iii) किसी सम्बद्ध विश्वविद्यालय का एक उपकुलपति।

(iv) राज्य का एक मुख्याध्यापक अथवा मुख्याध्यापिका। (राज्य का शिक्षा-संचालक।

(vi) उपर्युक्तपाँच सदस्य दो प्रतिष्ठित शिक्षाशास्त्रियों को मनोनीत करेंगे। राज्य का शिक्षा-संचालक, समिति का सचिव होना चाहिए। समिति का कार्यकाल 5 वर्ष का होना चाहिए। समिति का अपना अलग कार्यालय होगा। समिति के सदस्य अपना सभापति निर्वाचितकर सकते हैं।

समिति के कार्य-समिति के कार्यों का उल्लेख करते हुए, आयोग ने निम्नांकित विचार प्रकटकिये हैं

(1) माध्यमिक विद्यालय के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के प्रत्येक विषय के लिए विषय-विशेषज्ञोंकी तालिका तैयार करना। (2) निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों की उपयुक्तता के सम्बन्ध में समय-समय पर विशेषज्ञ समितियों की नियुक्ति करना।

(3) पाठ्य-पुस्तकें तथा आवश्यकता पड़ने पर, अध्ययन के लिए अन्य पुस्तकें लिखने के लिए विशेषज्ञों को आमन्त्रित करना। (4) पाठ्य-पुस्तकों के योग्य चुनाव के लिए यदि सम्भव हो तो अन्य राज्यों की उच्च-शक्ति समितियों से सह सहयोग प्राप्त करना। (5) माध्यमिक पाठशालाओं के लिए अपेक्षित पाठ्य-पुस्तकों तथा अन्य पुस्तकों को प्रकाशित कराने के लिए प्रबन्ध करना। (6) प्रकाशनों की बिक्री से हुए लाभ की धनराशि से एक निधि (Fund) की स्थापना करना।

(7) उन लेखकों को अधिशुल्क (Royalties) प्रदान करना, जिनकी पुस्तकें पाठ्य-पुस्तकों केरूप में अथवा निर्देश-पुस्तकों (Reference Books) के रूप में अनुमोदित की जाती हैं।

(8) निधि के शेष भाग का प्रयोग नीचे लिखे कार्यों पर किया जायेगा

(अ) निर्धन तथा योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करना। (ब) ऐसे विद्यार्थियों के लिए आवश्यक पुस्तकों का प्रबन्ध करना।

(स) पाठशाला के बालकों के लिए दूध, मध्यान्ह भोजन और सायं-अल्पाहार का प्रबन्ध करना

(द) सरकार के सामने ऐसे अन्य कार्यों की योजनायें रखना।

(घ) निर्देश-पुस्तकें आयोग के विचार में, विद्यार्थियों के सर्वतोमुखी विकास के लिए यह आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न प्रादेशिक भाषाओं में निर्देश-पुस्तकें (Reference Books) प्रकाशित की जायें। अध्यापक भी इस प्रकार की पुस्तकों से लाभ उठा सकते हैं और अपने ज्ञान को अद्यावधिक (Pt-to-date) बनाये रख सकते हैं।

(ङ) पाठ्य-पुस्तकों का परिवर्तन 'माध्यमिक शिक्षा आयोग' के मतानुसार समय-समय पर पाठ्य-पुस्तकों का परिवर्तन करना उचित प्रतीत नहीं होता, इसलिए उसका सुझाव है कि पाठ्य-पुस्तकों तथा अध्ययन के लिए निर्धारित अन्य पुस्तकों को बार-बार न बदला जाये। इस प्रकार के परिवर्तनों को निरुत्साहित करना चाहिए।